डुग्गर प्रदेश
के
अद्भुत
पराक्रमी
वीर
लेखक : देवेन्द्र कुमार

A4→R2
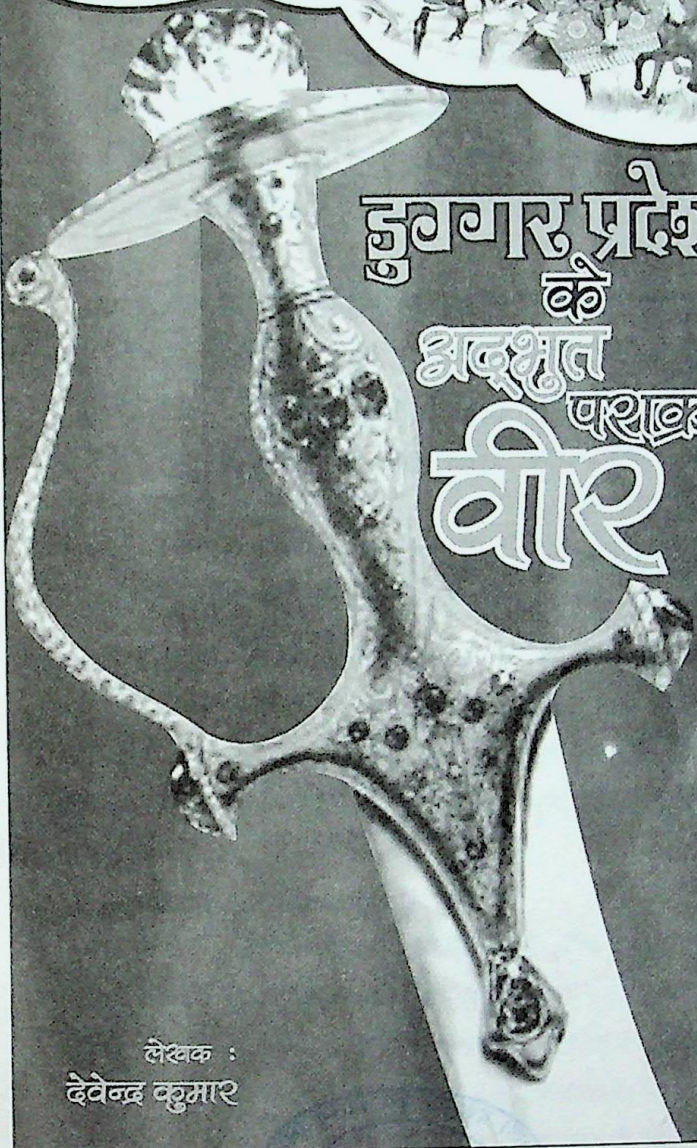
लेखक : देवेन्द्र कुमार

मुद्रक : रोहिणी प्रिंटिंग इण्डस्ट्रीज़, जम्मू।

प्रकाशक : दिव्य पब्लिकेशन
15–सी, भारत नगर,
रिहाड़ी कालौनी,
जम्मू तवी – 180005

प्रथम संस्करण: 2014–15

सम्पर्क : +91–191–2579518
+91–9469212321
+91–9469352370
E-mail : devgopal47@gmail.com

मूल्य : ₹ 650/–

दो शब्द

उत्तर भारत में स्थित जम्मू एक ऐसा प्राँत है जिसने बहुत से देश–भक्त व ऐतिहासिक योद्धाओं को जन्म दिया जिन्होंने देश की भलाई एवं सुरक्षा हेतु अपना सर्वस्व निछावर कर दिया। किसी जाति की प्रगति की ओर अग्रसर रहने का एक ही लक्षण है कि उसमें समय–समय पर महापुरुष जन्म लेते रहें। वे महापुरुष ही होते हैं जो जाति में नवजीवन का संचार करते हैं। उनका जीवन समाज में फूल की सुगन्धि का काम करता है। वे परिस्थितियों की देन हुआ करते हैं।

डुग्गर प्रदेश को यह गर्व प्राप्त है कि इस धरती पर अनेक वीर सपूतों ने जन्म लिया है, जो पूरा जीवन अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाते रहे हैं। जहाँ मियाँ डीडो जैसे वीरों ने सिक्ख शासकों के अत्याचारों के विरुद्ध खुली बगावत की, वहीं बन्दा वैरागी जैसी महान आत्माओं ने मुग़ल साम्राज्य की ईंट से ईंट बजा दी। इतिहास के पन्नों को यदि पलटा जाए तो हमें और भी ऐसे कई वीरों की गाथाएँ पढ़ने को मिल सकती हैं, जिन्होंने अपने प्रदेश की गरिमा बनाए रखने हेतु अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया। स्वतन्त्रता के उपरान्त भी इस प्रदेश के प्रति शासकों की भेद–भाव भरी नीति भी यहाँ की राष्ट्र–प्रेमी जनता को सदा ही अखरती रही है। सन् 1952–53 में प्रजा परिषद् द्वारा चलाया गया आंदोलन व 2008 में श्री अमरनाथ भूमि आंदोलन इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

ऐसे ही कुछ वीरों एवं योद्धाओं के जीवन की विशेष उपलब्धियों की जानकारी जुटा कर पाठकों के सामने इस पुस्तक के रूप में प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है। इसका एकमात्र उद्देश्य – देशवासियों में अपने धर्म, संस्कृति और राष्ट्र के प्रति बलिदान तथा श्रद्धा की भावना जगाना है। आशा ही नहीं, अपितु पूर्ण विश्वास है कि हमारे डुग्गरवासी

विशेषकर हमारी युवा–पीढ़ी इन वीरों के जीवन से प्रेरणा प्राप्त कर राष्ट्र–हित का चिन्तन व देश की भलाई व उत्थान हेतु अपना बहुमूल्य समय निकाल भरपूर सहयोग व समर्थन देंगें; क्योंकि यदि हमारा देश सुरिक्षत रहेगा तभी हम सुरक्षित रह सकते हैं अन्यथा हमारे शत्रु सदा से हमें निगलने में प्रयासरत हैं। इतिहास साक्षी है कि सदा सजग और सावधान रहने वाली कौम का कोई बाल बांका नहीं कर सका है। भाई परमानन्द जी ने हमारी जाति का कितना सुन्दर व सही आकलन किया है –

"हिन्दुओं के पतन का सबसे बड़ा कारण
राजनीति के प्रति उदासीनता है।"

आज बाहर के शत्रुओं के साथ–साथ भीतर बैठे देशद्रोहियों के प्रति अति सजगता बरतने की आवश्यकता है क्योंकि वे उन्हीं विदेशियों के एजेंट हैं जो उनसे मोटी–मोटी रकम ले कर देश को खोखला करने की ताक में हैं। अतः प्रत्येक भारतीय जो इस देश को अपना मानता है चाहे वह किसी भी मज़हब या जाति से संबंधित हो, भारत को सब से महान् देश बनाने में अपनी भूमिका निभाये ताकि हमारा देश पुनः संसार में विश्वगुरु की उपाधि प्राप्त कर सके।

अपनी बात

लेखक की छठी कृति आज आप के हाथ में है। इससे पहले पाँच रचनाएँ: मिटट्री की कशिश (2007), संघर्ष लीला (2008), आनन्द की राह पर (2010), पुरवा (2013) व पिंजरे का पंछी (2014) प्रकाशित हो चुकी हैं, जिन्हें पाठकों ने सराहा है। वर्तमान रचना उन वीरों के प्रति श्रद्धा सुमन के रूप में अर्पित है जिन्होंने इस डुग्गर भूमि की गरिमा को बनाये रखने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई एवं अपना बहुमूल्य बलिदान दिया है।

लेखक का यह सौभाग्य है कि उसका जन्म ऐसी भूमि (कोटली) में हुआ है जिसकी देश भक्ति व भाईचारे की मिसाल दी जाती है। एक अधिकारी (देव राज डोगरा) ने, जो बाहर से आकर यहाँ आकर कार्यरत रहे, अपने विचार इन शब्दों में व्यक्त किये :–

"मैं उस कोटली में रह आया हूँ, जहाँ पर मुझे हद से ज्यादा प्यार मिला। वहाँ रह कर मैं घर के सुख को भी भूल गया था। आज भी जब कोई कोटली का नाम लेता है तो मेरे मन में खुशी की लहर दौड़ पड़ती है। वास्तव में यदि यह कहा जाए कि कोटली वाले प्रेम और भाईचारे से भरे हुए हैं तो इसमें लेशमात्र झूठ नहीं है।"

सन् 1962 में चीन के आक्रमण के उपरान्त इस देश की जनता अपनी मातृभूमि की रक्षा हेतु किस प्रकार एकजुट खड़ी हो गई थी, वह कवि प्रदीप की इन पक्तियों से सिद्ध हो जाता है। इस गीत को लता जी के मुखारविंद से सुन कर तत्कालीन प्रधानमंत्री, पंडित नेहरू इतने भावविभोर हो गये थे कि वे अपने आँसू रोक नहीं सके। यह केवल देश के प्रधानमंत्री की स्थिति नहीं थी बल्कि देश के प्रत्येक नागरिक के हृदय में ऐसे ही उद्गार प्रकट हो रहे थे –

हे मेरे वतन के लोगो ज़रा आँख में भर लो पानी,
जो शहीद हुए हैं उनकी ज़रा याद करो कुर्बानी।

इतिहास साक्षी है कि समय–समय पर डुग्गर प्रदेश की सुरक्षा हेतु कितने ही वीर अपना अमूल्य बलिदान दे कर अमरत्व को प्राप्त हो चुके हैं; परन्तु अनगिनत ऐसे भी इस धरती के लाल हुए हैं जिन्होंने गुमनाम रह कर भी अपनी मातृभूमि के प्रति अपना सर्वस्व निछावर कर दिया। ऐसे सभी वीरों एवं योद्धाओं के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने हेतु वर्तमान रचना को लिपिबद्ध करने का एक छोटा सा प्रयास किया गया है। आशा है यहाँ का प्रत्येक नागरिक विशेषकर युवा वर्ग इन वीरों की गाथाओं से प्रेरणा ले कर अपनी मातृभूमि के प्रति अपने कर्त्तव्यों को समझने की चेष्टा करेगा और यह सुनिश्चित करेगा कि वीरों की इस धरती पर किसी प्रकार की आँच न आने पाये और अंदर व बाहर के शत्रु अपने नापाक इरादों में कभी सफल न हों। यह तभी संभव हो सकता है जब यहाँ का प्रत्येक नागरिक जागरूक हो कर अपने कर्तव्य एवं दायित्व को भली भाँति समझने की चेष्टा करेगा और अपने परिवार के दायित्वों के साथ–साथ देश व समाज के लिए भी अपना बहुमूल्य समय देने का संकल्प लेगा।

इस प्रयास में डुग्गर प्रदेश के सभी महापुरूषों एवं वीरों का वर्णन करना सम्भव नहीं हो सका। हृदय की गहराइयों से मैं उन्हें कोटि–कोटि नमन करता हूँ।

विषय सूची

जम्मू के शासकों का संक्षिप्त इतिहास

आयोध्या के राजा राम के बीसवें वंशज राजा सुदर्शन शिवालिक पहाड़ियों की ओर आते–आते रावी के किनारे पर पहुँच गए, जिसे आजकल कठुआ कहा जाता है। उसने आस–पास के कई गाँवों को अपने अधीन कर पुष्पावति एवं एरवा नामक नगरों पर राज्य स्थापित किया जो संभवतः कलियुग के 550 वर्ष में था। उसके पुत्र वायु शर्भ ने उसका उत्तराधिकारी बन अपने शासन को उज्ज तक बढ़ाया। उनके उत्तराधिकारी परमित्रा पूरन सिंह, लखन, खटजोशन व अग्निगरभ हुए।

अग्निगरभ बड़ा ही अभिलाषी व उत्कट आकांक्षा वाला था। उसने अपने राज्य को अपने 18 पुत्रों की सहायता से तवी नदी तक बढ़ा दिया। उसका पुत्र बाहुलोचन उसके राज्य का उत्तराधिकारी बना। उसने अपनी राजधानी ऐरवा से स्थानांतरित कर धारानगरी में स्थापित की और अपना शासन मदर देश (पंजाब) तक बढ़ाया। उसने शालाकोट (स्यालकोट) के राजा पर आक्रमण किया परन्तु हार खा कर मृत्यु को प्राप्त हुआ। उसकी कोई सन्तान न थी।

अग्निगरभ का छोटा भाई जाम्बू लोचन गद्दी पर बैठा। उसने स्यालकोट के राजा चन्द्रहास को हरा कर अपना शासन सिंध तक स्थापित कर लिया। वह इस क्षेत्र का एक शक्तिशाली राजा माना गया। ऐसा कहा जाता है कि राजा जाम्बू लोचन एक बार तवी के किनारे शिकार खेलने गया तो वह यह देख बड़ा हैरान हुआ कि एक शेर और बकरी तालाब पर एक साथ पानी पी रहे हैं। उसने विचार किया कि अवश्यमेव यह एक पवित्र स्थल है, यह सोचकर उसने यहाँ एक नगर बसाने का निश्चय किया जिसका नाम जाम्बुपुरा रखा गया जो बाद में जाम्बू, जम्बू व जम्मू में बदल गया। यह 2500 बी.सी के आस पास की घटना है।
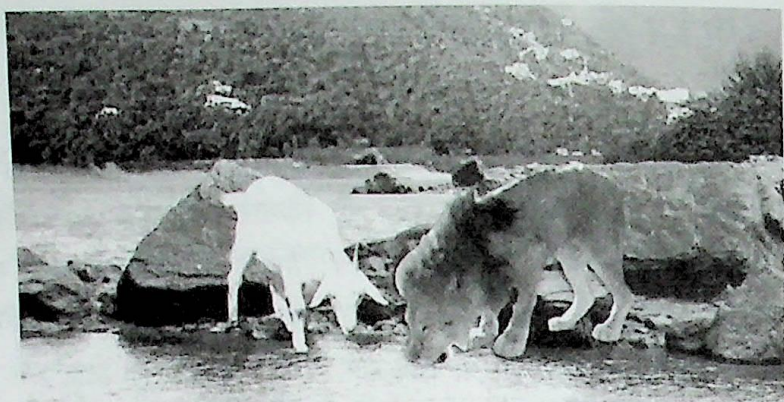
जम्मू नगर की सदियों पुरानी
सुनी है एक कहानी।
तवी किनारे शेर और बकरी
मिलकर पीते पानी।
जम्बू लोचन राजा ने जब
देखा अजब नजारा।
उसने अपने कोमल मन में
खाका एक उतारा।
तवी किनारे तब राजा ने
जम्मू शहर बसाया।
सब धर्मों के लोग बसा
समता का दीप जलाया।

उसके उपरान्त पूरन करण ने अपनी राजधानी बाहू से बदल कर जम्मू में स्थापित की। फिर धर्म करण, किरप करण व अग्निकरण के उपरान्त शक्तिकरण राजा हुआ जिसने डोगरी लिपि आरम्भ की। उसे शास्त्रों का अच्छा ज्ञान था और उसने अपने शासन को बनिहाल पीर तक बढ़ाया। इस वंश का अंतिम राजा शिव प्रकाश स्यालकोट के राजा शाल से पराजित हुआ जिसने जम्मू को अपने अधीन कर लिया। राजा शाल पाँडवों का मामा था जो महाभारत में वीरगति को प्राप्त हुआ। उस समय

जम्मू में अर्जुन के पुत्र, बबरू वाहन का शासन था। उसके वंश ने 500 वर्ष तक राज्य किया। उनके शासन काल में जम्मू असहाय हो गया और यहाँ कई जातियों व संगठनों का आधिपत्य हो गया जो अपनी मनमानी करने लगे।

ज्योति प्रकाश व सर्व प्रकाश ने जम्मू पर एक बार फिर अधिकार प्राप्त कर लिया। वह शक्तिकरण के स्थानीय वंशज थे। उनके वंश ने छठी शताब्दी बी.सी. तक शासन किया। उनके वंश का अंतिम राजा बाली करण था।

राजा बोध अर्जुन एक बहादुर शासक हुआ। उसने आस–पास के कई क्षेत्र अपने अधिकार में कर लिये। वह एक लोकप्रिय राजा हुआ जिसके शासन काल में जम्मू ने काफी तरक्की की। उसका शासनकाल कोई 80 वर्ष तक रहा। राजा बोध के वंशज ने लगभग 357 वर्ष तक शासन किया। बाद के शासन काल में कई उतार–चढ़ाव आये। कांगड़ा–नागरकोट के शासक राजा मंगलचन्द ने बोध अर्जुन के सातवें वंशज राजवल्लभ को मार कर जम्मू पर अधिकार प्राप्त कर लिया।

भानुजख ने मंगल चन्द को मार कर शान्ति स्थापित करने का प्रयास किया परन्तु असफल रहा। लोगों ने नगरों से पलायन करना शुरू कर दिया। पंजाब के सरदारों ने जम्मू पर आक्रमण किये जिससे आम जनता को परेशान हो कर जंगलों की ओर भागना पड़ा।

राजा भूम दत्त और उसके छः वंशज जम्मू में शाँति स्थापित करने में असफल रहे। राणा के समय जम्मू छोटे–छोटे टुकड़ों में बंट गया; परिणामस्वरूप राज्य की बागडोर स्यालकोट व तक्षशिला राजाओं के हाथ चली गई।

शासकों की श्रृंखला में दामोदर दत्त से लेकर नन्द गुप्ता तक जम्मू पर गंधार (कंधार) से शासन किया गया। अलेक्ज़ेंडर के हमले (326 बी.सी.) के समय दामोदर दत्त का सातवाँ वंशज राजा अजय सिंह

जम्मू पर राज्य करता था। वह राजा पुरु का दामाद था। वह पुरु की ओर से अलेक्ज़ेंडर के साथ लड़ाई में मारा गया। उसका पुत्र बिजोए सिंह गद्दी पर बैठा। उसने अपना राज्य पंजाब में झेलम तक बढ़ाया। उसी के वंशज राम गुप्ता ने रामगढ़ किला बनवाया और रामगरिया राजपूत वंश प्रारम्भ किया।

उसके बाद राय वंश ने 400 ई॰ तक जम्मू पर राज्य किया। उसके उपरान्त 840 ई॰ तक धार वंश का शासन रहा। फिर देव वंश का राज्य 1816 ई॰ तक रहा। देववंश के कुछ उल्लेखनीय राजाओं का वर्णन प्रस्तुत है :–

राजा जसदेव ने 1020 से 1053 ई॰ तक जम्मू पर शासन किया। इसने जसरोटा नगर की स्थापना की व जसरोटिया जाति (वंश) की नींव रखी। बाहू किले में काली देवी की पूजा व भैड़ (वरूण) देवता की पूजा इसी के काल में आरम्भ की गई।

मलदेव राजा ने 1361 से 1400 ई॰ तक राज्य किया। वह डोगरी भाषा का नायक था। उसने डोगरा राज्य की राजधानी जम्मू बनाई। उसी ने तवी नदी से चट्टान ला कर काली जनी में स्थापित की और पुरानी मण्डी में एक भवन का निर्माण किया, जिस का नाम माल मण्डी रखा गया। वह वहाँ की गद्दी पर प्रथम बार बैठा और सभी डोगरा राजाओं ने इस प्रथा को बनाए रखा।

राजा बैरम देव ने 1454 से 1489 ई॰ तक राज्य किया। उस की हकूमत में सब्जवार से सैय्यद कुतुब आलम जम्मू आया। उसने अधिकांश हिन्दुओं व मुसलमानों को अपना श्रद्धालु बनाया। वह मधुर स्वभाव वाला फकीर था, जिसको दूध और शक्कर अतिप्रिय था। इसलिए उसके श्रद्धालु उसे पीर मिट्ठा के नाम से पुकारने लगे और गन्ने भेंट करने लगे। एक अन्य सन्त (पीर) जोगी गरीब दास आ कर जामवन्त गुफा (खोह) में रहने लगा जो बाद में पीर खोह के नाम से जाना जाने लगा। इसी

वंश के बच्चों, हस्ल देव और शेरा ने दिल्ली दरबार से बहादुरी के खिताब प्राप्त किये। उन्होंने राजपूत वंश की दो जातियों सलाथिया और सरखानिया का शुभारम्भ किया।

राजा कपूर देव ने 1530 से 1571 ई॰ तक राज्य किया। उसके दो पुत्र थे जगदेव और समहेल देव। यह दो रानियों से एक ही दिन उत्पन्न हुए। अतः उसने अपने राज्य को दो भागों में बाँट दिया। जगदेव को बाहू का और समहेल को जम्मू का राज्य प्रदान किया गया।

राजा संग्राम देव ने 1594 से 1616 ई॰ तक राज्य किया। वह मुगल बादशाह जहाँगीर के काफी निकट था और उसने उससे बहुत लाभ उठाया। मुगल सेना के साथ कई बार युद्ध क्षेत्रों में गया और अन्त में दक्षिण के राजकुमार खुर्रम के साथ युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ।

राजा भूपत देव ने 1616 से 1656 ई॰ तक शासन किया। वह शाहजहाँ का समकालीन था। उसका भाई दलपत दलपतियां राजपूतों का पूर्वज बना।

राजा ध्रुवदेव ने 1707 से 1733 ई॰ तक शासन किया। वह मुगलों से बगावत कर जम्मू का स्वतंत्र शासक बना। उसने बन्दा बहादुर को शरण देकर मुगलों के विरुद्ध उसकी सहायता की। उसने अपने राज्य को दृढ़ कर एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना की। मुबारक मण्डी को बनाने वाला यही योग्य शासक था। इसने अपना महल मालदेव मण्डी (आज कल की पुरानी मण्डी) से नये महल मुबारक मण्डी में स्थानांतरण किया।

1733 से 1782 ई॰ तक रणजीत देव का शासन काल रहा। गुलाब सिंह से पहले रणजीत देव का नाम कुशल शासकों में गिना जाता है। उसने जम्मू में कुशल शासन एवं स्थिरता प्रदान की। दो बार इसे बन्दी बनाया गया। एक बार मुगल शासकों द्वारा उनके हुक्म को न मानने के कारण व दूसरी बार अफगानों द्वारा उनके कारवाँ को लूटने हेतु। परन्तु

दोनों बार वार्तालाप द्वारा संधि कर उसे छोड़ उसका राज्य वापस दे दिया गया। कश्मीर में पहाड़ी राजाओं के शासन–संघर्ष में अफगानों के लिए रणजीत देव महत्वाकांक्षी राजा था। जो 22 पहाड़ी रियासतों का महाराजा बना। उसने महत्वपूर्ण प्रशासनिक सुधार किये। उसकी योग्यता एवं वीरता ने उसे उत्तरी भारत की रियासतों का सर्वाधिक योग्य शासक बना दिया। जार्ज फास्टर, जिसने रणजीत देव की मृत्यु के एक वर्ष उपरान्त जम्मू का दौरा किया था, उसके कुशल प्रशासन, धार्मिक सहनशीलता, निष्पक्षता एवं उसके उच्च आचार की प्रशंसा की।

सिक्ख शासन काल

राजा रणजीत देव के उपरान्त उनके उत्तराधिकारियों बलराज देव, सम्पूर्ण देव व जीत सिंह ने 1782 से 1808 तक यहाँ राज्य किया परन्तु वह इतने कुशल शासक सिद्ध न हुए और अपनी सीमाओं की रक्षा करने में असमर्थ रहे। अन्ततः यह राज्य बिखर गया और 1808 में सरदार हुक्मसिंह ने इस पर अधिकार कर इसे सिक्ख राज्य के अधीन कर लिया। राजकुमार खड़क सिंह को 1812 में यह क्षेत्र जागीर के रूप में प्राप्त हुआ।

राजा रणजीत देव (जिनकी मृत्यु 1782 में हुई) के तीन भाई थे घनसार देव, सूरत सिंह और बलवन्त सिंह। सूरत सिंह के दो लड़के थे ज़ोरावर सिंह और मियाँ मोटा। ज़ोरावर सिंह का वंशज किशोर सिंह और उसकी सन्तान गुलाब सिंह, ध्यान सिंह और सुचेत सिंह हुई।

यहाँ एक घटना उल्लेखनीय है कि मियाँ किशोर सिंह (जो गुलाब सिंह के पिता थे) का विवाह महादेवी से हुआ, जो कि तत्कालीन बसौली राज्य के मैत्रयां ग्राम के राजपूत मियाँ किशन पाल सिंह की पुत्री थी। उस समय राजपूत बिरादरी के जिज़ वंश में एक प्रथा प्रचलित थी कि कन्या का जन्म होते ही उसे दफना दिया जाता था। किशन पाल सिंह के पारिवारिक पुरोहित को उनके यहाँ बच्चे के जन्म की जानकारी थी।

अतः उसने उस बच्चे की कुण्डली बनाई और किशन पाल सिंह के घर दिखाने चला गया। वहां उसे जाकर मालूम पड़ा कि घर वालों ने नवजात शिशु को पहले ही मिट्टी में दफना दिया है। यह सुनकर पुरोहित बड़ा मायूस हुआ और घर वालों को कहा कि आपने इस शिशु को दफना कर घोर पाप किया है। पुरोहित ने तब शिशु की कुण्डली पढ़कर घर वालों को सुनाई और उसके आधार पर पुरोहित ने बताया कि इस शिशु के भाग्य में राजयोग लिखा है जोकि आने वाले शासकों की जन्मदात्री होगी और महारानी कहलवायेगी। यह सुनकर घरवाले बहुत पछताये और तुरंत उस स्थान पर गये जहां शिशु को दफनाया गया था। शिशु को बाहर निकाल कर देखा कि संयोगवश उस की साँस अभी चल रही थी। उसे फौरन निकाल कर वापिस घर ले जाया गया। नवजात बच्ची ने थोड़े समय बाद दूध पीना आरम्भ कर दिया और इस प्रकार एक नन्हीं की जान बच गई जोकि आने वाले समय में जम्मू–कश्मीर राज्य की स्थापना में सहभागिनी बनी। कन्या के पिता को अपनी राजपूत बिरादरी से इस प्रथा की अवहेलना करने की क्षमा याचना करनी पड़ी। बड़े होने पर इस का विवाह मियाँ किशोर सिंह से हुआ और उस के गर्भ से तीन संतानें–गुलाब सिंह, मियाँ ध्यान सिंह और सुचेत सिंह उत्पन्न हुईं।

डोगरा–परिवार का गुलाब सिंह वह नौजवान था जिसने महाराजा रणजीत सिंह के दरबार में सर्वप्रथम नौकरी की। महाराजा रणजीत सिंह तीनों भाइयों की बुद्धिमता व वीरता से शीघ्र प्रभावित हो गए। उन्होंने अपनी बहादुरी का परिचय हजारा और हाजरू की लड़ाई में प्रदर्शित किया जिसमें अफगानों को आरम्भिक विजय के बाद बुरी तरह पराजित होना पड़ा। यह लड़ाई एटोक के निकट 13 जुलाई 1813 में लड़ी गई। अपनी कुशलता एवं सूझबूझ के कारण अन्ततः 1846 में गुलाब सिंह को जम्मू कश्मीर का महाराजा नियुक्त किया गया।

(सिक्ख शासन काल के महाराजा रणजीत सिंह)

बाबा जित्तो

इस धरती पर लगभग कोई 500 वर्ष पूर्व एक महान आत्मा का जन्म हुआ जो बाबा जित्तो के नाम से जाना जाता है। अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाने वाले इस महापुरुष को आज भी इतने वर्षों बाद बड़ी श्रद्धा से याद किया जाता है। जम्मू से करीब 20 कि.मी. दूर झिड़ी के स्थान पर बाबा जित्तो का मन्दिर है जहाँ दूर–दूर से लोग हर वर्ष कार्तिक पूर्णिमा को आकर अपने श्रद्धा सुमन भेंट करते हैं। यहाँ हर वर्ष इसी दिन एक सप्ताह के लिए एक बड़ा मेला लगता है, जहाँ अपनी मान्यता अनुसार लोग अपनी कुल देवी–देवताओं को भी पूजते हैं।

ऐसा कहा जाता है कि भगवान की अपार कृपा से (जाजला और रूपो) दम्पति के एक पुत्र हुआ जिसका नाम जित्तमल रखा गया। माता–पिता प्यार से उन्हें जित्तो कहकर पुकारते थे। बाल्यकाल में ही माता–पिता जित्तो को उनकी मौसी (बिरादरी में चाची) जोजा को सौंप कर इस दुनिया से चल बसे। जित्तो बचपन से ही भक्ति–भाव में लीन रहते थे। खेतीबाड़ी के साथ–साथ सुबह शाम राजा मण्डलीक (गुग्गा वीर) की पूजा–अर्चना करते थे। एक दिन माता वैष्णो के दरबार दर्शन करने गये। वहाँ उन्हें ऐसा आनन्द प्राप्त हुआ कि उन्होंने रोज़ माँ के दरबार जाने का निश्चय कर लिया। इस प्रकार 12 साल भक्ति पूरे होने पर माता वैष्णो ने उन्हें एक कन्या के रूप में दर्शन दिये तथा वर दिया– "जित्तो तुझे अब रोज़ यहाँ आने की आवश्यकता नहीं। तू जहाँ चाहेगा वहीं मेरे चरणों का जल बहेगा। तू वहीं स्नान करना तथा वहाँ स्नान करने से तथा जल पीने से जग का भला होगा। तू रोज़ सुबह–सवेरे मेरे दर्शन करना चाहता है तो सुन तेरे एक कन्या होगी जो मेरा ही रूप होगी।" जित्तो ने पूरे जीवन शादी न करने का प्रण लिया था। यह जानने पर माता ने कहा कि "वह कन्या आप–शक्ति होगी। वह किसी के पेट से नहीं होगी, तू उसे बेटी की तरह पालना।"

दूसरे दिन जित्तो ने जहाँ–जहाँ पहाड़ी को कुरेदा वहां से जल बहने लगा। अब वह खेतीबाड़ी के काम से निवृत्त होकर वहीं स्नान करते। एक दिन स्नान करने के बाद जब वह कपड़े पहनने लगे तो देखा कि उनकी पगड़ी के बीच कमल के फूल में एक कन्या खेल रही है। जित्तो यह चमत्कार देख कर बाग–बाग हो गये और उसे घर ले गये तथा उसका पालन–पोषण करने लगे। उन्होंने इस कन्या का नाम माता वैष्णो का ही एक नाम (गोरी) रखा तथा प्यार से उसे "कौड़ी" कहकर पुकारने लगे। जित्तो की चाची मौसी जोजा जो अब तक बड़ी खुश थी कि जित्तो की सारी जायदाद उसके सात पुत्रों को मिल जायेगी पर अब जित्तो का सारा लगाव कौड़ी की ओर होने से परेशान रहने लगी। वह तन्त्र–विद्या भी जानती थी। उसने हर रोज़ कोई न कोई कलह करनी शुरू कर दी। जित्तो दुःखी हुए और उन्होंने समझ लिया कि चाची उन्हें चैन से नहीं रहने देगी। उन्होंने अपने मकान को ताला लगा दिया तथा सारी ज़मीन चाची और उसके पुत्रों को सौंप कर बुआ कौड़ी तथा बैलों की जोड़ी लेकर जम्मू की ओर चल दिये।

वह अपनी लाडली बेटी बुआ कौड़ी को लेकर गाँव झिड़ी (शामाचक) आ गये। वहाँ उनकी मुलाकात किसान इस्सो से हुई। बाबा ने उन्हें अपनी आपबीती सुनाई। इस्सो ने बाबा को अम्बघरोटा के किरदार मेहता बीर सिंह से मिलवाया। बाबा ने मेहता बीर सिंह से प्रार्थना की कि उन्हें कुछ भूमि खेती हेतु दी जाए ताकि वह अपना निर्वाह कर सके। बीर सिंह ने उनके आग्रह को मानते हुए उन्हें जंगल के साथ लगती एक भूमि का टुकड़ा दिया। बाबा ने कहा कि इस भूमि पर जो भी फसल उगेगी उसका चौथा हिस्सा उन्हें दिया जायेगा। ज़मींदार ने यह सोच कर हाँ कर दी कि बंजर भूमि पर क्या फसल उगेगी? वह जमीन उपजाऊ न होकर बंजर थी। जिस पर खेती करना बड़ी ही मेहनत का कार्य था। राजा की ओर से इस हेतु एक इकरारनामा भी लिखवा लिया गया जिसमें बाबा जित्तो को फसल का चौथा भाग ज़मींदार को देना था। बाबा जित्तो ने इकरारनामे के कागज़ पर अंगूठा लगा भूमि हासिल कर ली।

बाबा ने रात–दिन बड़ी कड़ी परिश्रम से व अपनी लड़की की सहायता से उस जमीन के टुकड़े को फसल के लायक बनाया। बंजर होने के कारण पथरीली जमीन पर फसल उगाना कितना कठिन कार्य है, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। लगातार परिश्रम से उस जमीन को फसल के लायक बनाया गया फिर खेत जोत कर बाबा ने गौसाईं नाम के एक किसान से बीज उधार लेकर फसल बो दी।

जैसे–जैसे दिन व्यतीत होते गये फसल उगने लगी। निरंतर देख–रेख व मेहनत से उस ज़मीन के टुकड़े पर बहुत अच्छी फसल उग गई। बाबा और उसकी लड़की अपनी मेहनत रंग लाने पर व अच्छी फसल लहलहाती देख बहुत प्रसन्न हुए और इस प्रकार उनके सपने साकार हुए। यह केवल उनकी सत्यनिष्ठा, मेहनत व लगन का ही परिणाम था। आखिर फसल अच्छी हुई। बाबा जित्तो ने कटाई कर फसल इकटठ्ी की और ज़मींदार को संदेश भेजा कि अपने हिस्से के दाने ले जाओ। ज़मींदार बीर सिंह मेहता ने जब दानों का ढेर देखा तो उसे विश्वास नहीं हुआ। फसल की अच्छी उगाई देख उसका मन बेईमान हो गया। उसने अपने आदमियों को आदेश दिया कि तीन–चौथाई हिस्सा फसल का उठा लो और केवल चौथा हिस्सा बाबा जित्तो को दे दो। यह इकरारनामे के बिल्कुल विपरीत था। इकरारनामे के अनुसार बीर सिंह को फसल का केवल चौथाई भाग ही लेना था, शेष के स्वामी बाबा जित्तो थे। परन्तु अच्छी फसल देखकर वह बदनियत हो गया और अपने आदमियों को फसल का तीन चौथाई भाग उठाने का हुक्म दिया।

बाबा जित्तो यह अन्याय सहन न कर सके। उन्होंने बीर सिंह से प्रार्थना की कि यह सरासर अन्याय है और इकरारनामे के विरुद्ध है। उन्हें केवल एक चौथाई भाग लेने का हक है। परन्तु निर्दयी बीर सिंह ने एक न सुनी। उसके पास शासन की शक्ति थी। उसके आदमियों ने फसल का तीन चौथाई भाग उठाना आरम्भ कर दिया। निकटवर्ती गाँव से काफी लोग यह सब देखने के लिए एकत्रित हो गये परन्तु किसी को भी यह साहस न हुआ कि मेहता बीर सिंह को घोर अन्याय करने से

रोक सके क्योंकि सभी उससे व राजा के आदमियों से डरते थे। 'जिसकी लाठी उसी की भेंस' वाली कहावत यहाँ सिद्ध होती है।

जित्तो ने महसूस किया कि कोई उनकी बात सुनने को तैयार नहीं और न ही उनकी सहायता के लिए कोई आगे आ रहा है। उनकी दिन–रात की कड़ी मेहनत बेकार जा रही है। उन्होंने सोचा था कि अच्छी फसल के कारण उनका जीवन आराम से कटेगा। यह सब देखकर जित्तो को क्रोध आया। उन्होंने अपनी कटार निकाली और बीर सिंह को कहा कि "यह मेरी खून–पसीने की कमाई है, तू लालची बन गया है तथा अधर्म के रास्ते पर चल पड़ा है। इसलिए तूझे इस गेहूँ के साथ मेरा माँस भी खाना पड़ेगा।" उन्होंने भगवान का नाम लिया और पलक झपकते ही फसल के ढेर पर चढ़ कर कटार से अपने आप को शहीद कर दिया और सारा अनाज उन के खून से रंग गया। बुआ कौड़ी को जब पता चला तो वह भी अपने बापू (जित्तो) के साथ चिता पर सती हो गई। जित्तो के कुर्बान होते ही भयानक तूफान चलने लगा। दाने बिखर कर दूर–दूर तक गिरे। अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाने वाले वीर जित्तो को इस के बाद सभी लोग उन्हें देव रूप में मानने लगे। आज भी उन्हें बड़े आदर व श्रद्धा से याद किया जाता है। जिनको अपनी श्रद्धांजलि भेंट करने हेतु आज भी हजारों श्रद्धालु हर वर्ष इस स्थान पर इक्टठे होते हैं।

ऐसा भी कहा जाता है कि बाबा जित्तो के खून से भरे लाल रंग के दानों को खाने वाले लोगों व पशु पक्षियों को बाबा का कर्ज उतारने इस विशेष स्थान पर हर वर्ष हाज़री देनी पड़ती है। झिड़ी का मेला उसी का पूरक है। देश के विभिन्न राज्यों के श्रद्धालु भी यहाँ पूर्वजों की गलतियों को माफ करवाने व अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति हेतु इस स्थान पर हर वर्ष कार्तिक पूर्णिमा पर आयोजित एक विशाल मेले में भाग लेते हैं जो अब एक तीर्थ स्थान के रूप में परिवर्तित हो चुका है।

बन्दा वैरागी

कार्तिक शुक्ल पक्ष सम्वत् 1727 तदानुसार अक्तूबर सन् 1670 जम्मू से 102 कि.मी. दूर स्थित पुन्छ की पर्वतीय रियासत (वर्तमान राजौरी ज़िला) के जोरा ग्राम में एक राजपूत माँ के गर्भ से एक दिव्य बालक ने जन्म लिया, जिसका नाम लक्ष्मण देव रखा गया। इनके पिता राम देव भरद्वाज राजपूत थे। कोई सोच भी नहीं सकता था कि यह बालक बड़ा हो कर मुगल राज्य की नींव हिला देगा। वैरागी के कई रूप हमारे सामने उजागर होते हैं– शिकारी राजपूत, वैरागी, सेनापति, विजेता, शासक व भीषण आपदाओं का सामना करने वाला शहीद। जिस भाँति महात्मा बुद्ध, महर्षि बाल्मीकी और महर्षि दयानंद के जीवन में विशेष घटनाओं के कारण परिवर्तन हुआ, ठीक उसी प्रकार लक्ष्मण देव का जीवन भी एक दम परिवर्तित हो गया। एक बार जब लक्ष्मण देव शिकार कर रहा था, सामने हरनी चौकड़ियाँ भरती हुई भागी जा रही थी। लक्ष्मण के अचूक तीर से हरनी लुढ़कती हुई पृथ्वी पर गिर पड़ी। लक्ष्मण ने उसका पेट चाक किया, वह गर्भिणी थी। दो बच्चे उसके पेट से निकले। हरनी व उसके दोनों बच्चों ने लक्ष्मण के देखते–देखते प्राण त्याग दिये। हरनी व उसके बच्चों की मृत्यु वीर राजपूत सह न सका। उसने अपने धनुष–बाण से बड़े–बड़े प्राणियों की हत्या की थी परन्तु इन नन्हें बच्चों को मरते देख लक्ष्मण जैसे वीर का ह्रदय छिन्न–भिन्न हो गया और उसने आगे से शिकार न खेलने का संकल्प लिया। उस समय बन्दा की आयु केवल 15 वर्ष थी।

एक दिन एक साधु मण्डली राजौरी आई उनमें से एक साधु का नाम जानकी दास था। उसके प्रवचन सुन लक्ष्मण दास इतना प्रभावित

हुआ कि उसने घर बार त्यागने का निश्चय कर लिया। साधु मण्डली के साथ जगह–जगह घूमने लगा और वह उसे लाहौर ले आये। यहाँ पर लक्ष्मण ने साधु वेश धारण कर अपना नाम माधो दास रखा और वैरागी पन्थ को ग्रहण किया। भ्रमण करते–करते माधो दास गोदावरी तट पर नान्देड़ में कुटिया बना ईश्वर भक्ति में तल्लीन हो गया। यहाँ वह एक योगी औगर नाथ के सम्पर्क में आए जिन्होंने माधो दास को यौगिक क्रियाओं व तांत्रिक विद्या की शिक्षा प्रदान की। माधो दास ने वहाँ अपना डेरा स्थापित किया और काफी प्रख्यात हो गये। काफी लोग इनके श्रद्धालु बन गये। इस समय इन की आयु 36 वर्ष के लगभग थी।

ऐसा कहा जाता है कि माधोदास ने काफी सिद्धियाँ प्राप्त कर ली थीं। उन्होंने आश्रम में एक पलंग रखा था जिससे आश्रम में आने वाले अन्य सन्यासी के आत्मिक बल (spiritual powers) की परीक्षा ली जा सकती थी। यदि उस पर आसीन सन्यासी उसके स्तर के अत्मिक बल का न हो तो वह अपनी सिद्धियों के बल पर उस पलंग को उलट सकता था। इन्हीं दिनों गुरु गोविन्द सिंह पंजाब प्रान्त एवं अपने सिक्खों के विपरीत व्यवहार व विद्रोह से दुःखी होकर तथा अपने चारों बच्चों के युद्ध में काम आने से निराश हो कर पंजाब, दिल्ली (जहाँ उनकी पत्नियाँ थी), उत्तर प्रदेश, राजस्थान व मध्यप्रदेश को छोड़ कर दक्षिण पहुँचे और उज्जैन में एक यादू–पंथी गुरु नारायण दास से उन्हें बैरागी के बारे में मालूम हुआ। गुरु जी को किसी ऐसे ही अद्‌भुत योद्धा की तलाश थी। वह वैरागी को मिलने चल पड़े। यह घटना सितम्बर सन् 1708 की है। जब गुरु गोविन्द सिंह जी अपने शिष्यों सहित माधोदास के डेरे पर पहुँचे, उस समय माधोदास वहाँ नहीं थे। गुरु गोविन्द सिंह जी आराम करने के लिए उसी पलंग पर बैठ गये और अपने शिष्यों को लंगर तैयार करने का आदेश दिया। गुरु जी ने अपना तीर–कमान पलंग पर रख दिया।

वापस आने पर वैरागी ने अपनी सिद्धि द्वारा पलंग को उलटने का प्रयत्न किया परन्तु सफल न हो सका। गुरु गोविन्द सिंह जी की

आत्मिक शक्ति को पहचानते हुए वैरागी बहुत प्रभावित हुआ और उनके आगे नतमस्तक हो गये। वैरागी ने गुरु जी को कहा 'मैं तेरा बन्दा' (मैं अब आप का हो गया हूँ)। गुरु जी ने खड़े हो कर वैरागी को गले लगाया और उत्तर दिया– "तू मेरा बन्दा तो मैं तेनू कीता बुलन्दा" (यदि तू मेरा आदमी है तो मैं तुझे बड़े आदर व सम्मानजनक मानता हूँ)। गुरु गोविन्द सिंह ने वैरागी को अपना शिष्य बना बहादुर का खिताब प्रदान किया, जिसके उपरान्त वह बन्दा बहादुर के नाम से जाना जाने लगे। गुरु जी ने पंजाब में लोगों पर हुए अत्याचार, वहाँ की परिस्थितियों एवं अपने मन की व्यथा से बन्दा को अवगत कराया। गुरु गोविन्द सिंह के उद्देश्य को पूरा करने के लिए अपने ऊपर लेकर वैराग्य त्याग बन्दा कर्मयोग पथ पर चल पड़े। परन्तु न जाने गुरु गोविन्द सिंह पंजाब से क्यों इतने दुःखी थे कि वे बन्दा के साथ न आये। बन्दा को गुरु जी ने पाँच तीर, एक निशान साहिब, एक नगाड़ा और एक हुक्मनामा देकर दोनों पुत्रों को दीवार में चिनवाने वाले सरहिन्द के नवाब से बदला लेने को कहा। अन्ततः गुरु जी ने मुग़ल शासकों के अत्याचार से लोगों को छुड़वाने हेतु बन्दा को प्रेरित किया। बन्दा ने अक्तूबर 1708 को भाई बाज सिंह व कुछ सिक्ख सैनिकों को साथ ले पंजाब की ओर कूच किया।

गुरु गोविन्द सिंह के दक्षिण चले जाने के बाद कई सिक्ख नवाब सरहिन्द के यहाँ मुलाज़िम हो गये। नवाब ने वैरागी का हाल सुना और बड़े घमण्ड में आकर सिक्ख सिपाहियों से कहने लगा, "तुम्हारे एक गुरु की तो यह दुर्गति हो रही है कि वह भागा–भागा फिरता है और अब एक नया आया है, उसकी भी ऐसी खबर ली जाएगी कि उसका कहीं पता न लगेगा।" घृणा और अपमान से भरी यह बात सिक्ख सहन न कर सके और नौकरी छोड़ वैरागी से आ मिले।

बन्दा के अन्दर विद्युत शक्ति थी। ज्यों ही थोड़ी सी फौज़ तैयार हुई, वैरागी ने सामाना के नगर पर चढ़ाई कर दी और साथ ही यह घोषणा कर दी कि जो लूट का माल जिसके हाथ आयेगा, उसका

मालिक लूटने वाला ही होगा। नगर में खूब लूट मार हुई। तीन दिन तक सामाना में ईंट से ईंट बजती रही। इस नगर पर प्रकोपों का कारण यह बताया जाता है कि अलीहुसैन, जिसने गुरु के साथ धोखा करके आनन्दपुर छुड़ाया था, यहीं का रहने वाला था। इसने गुरु के बच्चों के बारे में सरहिन्द के सूबेदार से कहा था, "साँपों के बच्चे साँप होते हैं।" गुरु तेग बहादुर का घातक जलालुद्दीन भी इसी नगर का रहने वाला था। इसके बाद वैरागी की सेना ने अम्बाला, सीफाबाद, संवारा, दामल तथा कैथल आदि नगरों में लूटमार करके कंजपुर पर अपना अधिकार जमा लिया। इसके बाद वैरागी ने मुखलिसगढ़ के किले पर अधिकार कर लिया, इसका नाम लोहगढ़ रखा और इसमें बहुत सा गोला बारूद जमा किया।

वैरागी का हृदय प्रतिकार के लिये जल रहा था। अब उन्होंने सरहिन्द की ओर रुख किया। यह वही स्थान था जहाँ गुरु गोविन्द सिंह जी के नन्हें बच्चों को मौत के घाट उतारा गया था। सूबेदार ने भी तैयारी में कसर नहीं छोड़ी। दोनों ओर की सेनाएँ बड़ी वीरता से लड़ीं। नवाब की सेना के पास युद्ध का सामान बहुत था। धनुष की लड़ाई में वैरागी के सैनिक शेर थे, किन्तु उनके पास तोपें नहीं थीं। वैरागी के सैनिक घबरा कर भागने लगे। वैरागी ने पीछे से आ कर युद्ध का स्वयं संचालन किया। इसके तीरों में इतनी शक्ति थी कि वह गोलों का मुकाबला करते थे। तोपें चलाने वाले खान वैरागी के तीरों के लक्ष्य बन गये। आगे बढ़ते हुए वैरागी ने वजीर खां को ललकारा परन्तु उसमें इतना साहस कहाँ था? अंततः उसकी फौज के पाँव उखड़ गये। वजीर खां के हाथी का एक पाँव भागते हुए कब्र में फंस गया। सूबेदार स्वयं नीचे गिर गया। उसका गिरफ्तार होना था कि उसकी सेना भाग खड़ी हुई। इस प्रकार वैरागी ने वजीर खाँ का वध कर गुरु गोविन्द सिंह के बच्चों की हत्या का बदला ले लिया। सरहिन्द पर अधिकार कर बन्दा बहादुर ने सिक्ख राज्य स्थापित कर भारत की स्वतन्त्रता की नींव रखी। बाज सिंह को सरहिन्द का गवर्नर नियुक्त किया गया। इसके बाद वैरागी ने और कई

नगरों पर अधिकार कर लिया। इसके देखते हुए कई छोटे–मोटे रजवाड़ों ने स्वयं वैरागी की अधीनता स्वीकार कर ली। वैरागी ने डोण्डी पिटवा दी कि हिन्दू राज्य स्थापित हो गया है और कोई भी दिल्ली के बादशाह को लगान न दे। वैरागी ने स्वयं होशियारपुर में डेरा लगा दिया। समस्त प्रदेश अधिकारियों में बाँट दिया पर आप सन्त ही रहे।

वैरागी की वीरता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि मुग़ल इसका नाम मात्र सुनने से भय खाने लगते थे। वीर योद्धा, विजेता से भी बढ़ कर एक बात जो वैरागी को श्रद्धेय बनाती है, वह है कि इतनी विजय प्राप्त करते हुए भी इन्होंने अपना साधु जीवन नहीं छोड़ा। युद्ध में भी वह पृथक बैठे हुए ध्यान और भक्ति में लीन रहते थे। केवल युद्ध क्षेत्र में अपने सिक्ख सैनिकों को कमज़ोर पड़ता देख उनमें उपस्थित हो जाते थे। जब राज करने का समय आया तो समस्त राज्य अपने सरदारों में बाँट दिया और स्वयं संत के संत ही रहे।

सरहिन्द में सिक्ख शासन स्थापित करने के उपरान्त बन्दा ने सहारनपुर, जलालाबाद, बटाला, कलनपुर और कई पहाड़ी रियासतों को जीत कर अपने अधीन कर लिया। इसी प्रकार अन्य कई इलाकों ने जिसमें फगवाड़ा, तलवण्डी, जालंधर, व्यास, सूरसिंह, पट्टी, खेमकरण इत्यादि ने बन्दा की अधीनता स्वीकार कर ली। इस तरह बहुत बड़े इलाके पर हिन्दुओं का अधिकार हो गया। हज़ारों हिन्दू इनकी सेना में भर्ती हुए। लोगों में इतना जोश था कि सभी बन्दा को गुरु गोविन्द सिंह के पश्चात् ग्यारहवाँ गुरु कहने लगे। वैरागी की तीरन्दाज़ी के कमाल से मुग़लों पर बड़ा भय छा गया था। जनता में यह बात फैल गयी कि वह बड़ा 'बली' है। इसने जिन्न–भूत अपने वश में किये हुए हैं।

नालागढ़, नाहन तथा खलौर आदि को भी अपने अधीन कर वैरागी अमृतसर पहुँचे और वहाँ दरबार साहब में बहुत सा रुपया, जवाहरात भेंट चढ़ाए। असाधारण दरबार किया और अपने बहादुर सिक्खों को पुरस्कार दिए। इस घोषणा से कि सिक्ख बनने वाले को पुरस्कार मिलेगा बहुत से

जाट वैरागी की सेना में भर्ती हो गये। बन्दा और मुग़ल सैनिकों के मध्य कई लड़ाइयाँ लड़ी गयीं परन्तु सिक्ख सैनिक हमेशा ही विजयी होते। उनकी विजय इतनी विशेष होती कि लोगों को विश्वास हो गया कि उनकी जीत इसलिए संभव है क्योंकि बन्दा के पास कोई गुप्त शक्ति है। बन्दा ने शासन की ओर भी अपना ध्यान दिया और उन क्षेत्रों में, जहाँ उसका आधिपत्य हो चुका था, ज़मींदारी प्रथा को समाप्त करके भूमि किसानों के हवाले करने का आदेश दिया। बन्दा ने मुसलमानों को आश्वस्त किया कि उन्हें पूरी धार्मिक स्वतन्त्रता है। लोहगढ़ किले का जीर्णोद्धार कर बन्दा ने सच्चे गुरु के नाम का नया सिक्का आरम्भ किया। बन्दा की सफलताओं से घबरा कर दिल्ली के बादशाह बहादुर शाह ने स्वयं ही बड़ी सेना ले पंजाब की ओर कूच किया। परन्तु बन्दा तब तक पहाड़ों की ओर निकल चुके थे।

इस बात से वैरागी की असफलता का रहस्य मिलता है कि इनके स्वभाव से वैराग्य भाव अभी तक पूर्ण रूप से न निकल सका। वह बार–बार विजय प्राप्त करते, किन्तु राज–शक्ति अपने हाथ में न रख कर, दूसरों को सुपुर्द कर देता था और सारी सम्पत्ति सिक्खों में बाँट कर स्वयं पहाड़ों पर जा कर भक्ति में तल्लीन हो जाते। बन्दा की अनुपस्थिति में मुग़ल फिर ताकत पकड़ लेते और सिक्ख सैनिकों को खदेड़ना प्रारम्भ कर देते।

वैरागी के जीवन की यह बड़ी भूल थी कि उनके अन्दर से वैराग्य की गन्ध सर्वथा न निकल सकी। इसका परिणाम स्वयं वैरागी के लिये और हिन्दू धर्म के लिये प्राण–घातक साबित हुआ। वैरागी को शक्ति हाथ में रखने का शौक न था। वह सब कुछ देश और धर्म की रक्षा के लिये कर्त्तव्य समझ कर ही करते थे। अतः वह समस्त राज्य सिक्खों के हाथ में दे देते थे।

अनेक नगरों पर अधिकार प्राप्त करने के बाद बन्दा रियासी (जम्मू) के निकट चनाब के किनारे (जहाँ आज कल डेरा साहब का स्थान है) पर चले गये, जहाँ वह सन् 1713 से 1715 तक रहे। इधर 1712 ई. में बहादुर शाह की मृत्यु के उपरान्त उसका बेटा गद्दी पर बैठा जिसको उसके सम्बन्धी फरुखसीयार ने गद्दी से उतरवा कर स्वयं राजपाट अपने हाथों में ले लिया। उसने बाबा बन्दा सिंह बहादुर को पकड़ने या कत्ल करने के सख्त आदेश जारी किये। इसी के आदेश पर सूबा लाहौर ने 1715 ई. में सेना ले कर सरहिन्द पर चढ़ाई की और सिक्खों को पराजित किया मगर ठीक समय पर बन्दा वापस आ गये और उसने नवाबी सेना पर बड़े ज़ोर की तलवार चलाई। रुधिर की धारा बह निकली और शाही सेना तितर--बितर हो गयी। फरुख सीयार ने देखा कि लाहौर के सूबा के लिए वैरागी पर काबू पाना संभव नहीं। इसने मंत्री मण्डल से परामर्श किया। निश्चय यह हुआ कि अब कोई और ढंग बरतना चाहिए।

दिल्ली में बहुत समय से गुरु गोविन्द सिंह की दो पत्नियां-- माता सुन्दरी और साहब देवी रहती थीं। बादशाह ने इनके द्वारा अपना मतलब साधना चाहा। बादशाह अपनी दण्ड नीति में सफल न हो सका इसलिये अब उसने साम और दाम नीतियों का सहारा लिया। अपने एक हिन्दू मंत्री को भेंटों सहित भेज गुरु पत्नियों को अपने मायाजाल में फंसाने का प्रयत्न किया और सिक्खों को जागीरें देने का लोभ दिखा कर बन्दा को मुग़ल सैनिकों के विरुद्ध कारवाई बन्द करने हेतु पत्र भेजने को राजी कर लिया। गुरु गोविन्द सिंह इस समय दक्षिण में ही थे अतः बादशाह का दाँव गुरु की स्त्रियों पर चल गया। गुरु पत्नियों को उनके साथियों भाई मान सिंह व भाई सदकी सिंह ने बहुत समझाया कि बादशाह की चालों में न आइये। वैरागी को किसी प्रकार का पत्र न लिखिए। न तो वह गुरु का शिष्य है और न ही आपका उस पर कोई ज़ोर है। परन्तु माता ने एक न मानी और बादशाह की इच्छा अनुसार वैरागी को पत्र लिख भेजा।

"तुम गुरु के सच्चे सिक्ख साबित हुए हो। तुमने पंथ की बड़ी सेवा

की है। इसे डूबने से बचाया है परन्तु अब बादशाह जागीर देने पर राजी हो गया है तुम जागीर स्वीकार कर लो। हमारा कहना मान जाओ और लूट मार बन्द कर दो।"

पत्र पढ़ते ही वैरागी का मुँह लाल हो गया। उन्होंने उस पत्र का नकारात्मक उत्तर देते हुए लिखा – "आप का मुझे ऐसा पत्र लिखना व्यर्थ है। मुझ पर आपका क्या अधिकार है? आप गुरु के शिष्य हो, मैं वैरागी साधु हूँ। मैं कभी गुरु का शिष्य नहीं रहा। गुरु गोविन्द सिंह मुझे मिले अवश्य थे। एक बार उन्होंने मुझ से कहा था कि मेरे बच्चों का प्रतिकार लो। मैंने अपनी तलवार और धनुष बाण से इतना प्रदेश जीता है और इन्हीं शस्त्रों से लाहौर और दिल्ली जीतूंगा। न मैं किसी की जागीर लेना चाहता हूँ न किसी का उपकार मानता हूँ। आप मुग़ल बादशाह के पास जाओ किन्तु जब तक हमारे हृदयों के अन्दर गुरु–पुत्रों की स्मृति शेष है, हम मुग़लों को खदेड़ने के अपने निश्चय को कभी निर्बल नहीं होने देंगे।"

देश के भाग्य को उलटना था। दोनों माताओं ने वैरागी के उत्तर को अपना अपमान समझा। आग पर तेल डालने वाले इसी अवसर की तलाश में थे। दिल्ली के बादशाह की ओर से अब दोनों माताओं का आदर किया जाने लगा। दोनों उसकी चाल में फंस कर वैरागी के सब उपकारों को भूल गये। उन्होंने सिक्ख सरदारों और पन्थ को पत्र लिख भेजे कि आप में से जो कोई गुरु गोविन्द सिंह का सिक्ख है, वह वैरागी का साथ न दे, क्योंकि वह अपने आप को उन का शिष्य नहीं मानता। सिक्खों ने इसका प्रतिवाद यह कह कर किया कि हम किसे अपना अगुआ मानें, तो इस पर आदेश हुआ, "गुरु को सदा संग समझो, वे सदा ही तुम्हारे अगुआ हैं। कभी वैरागी के सामने सिर न झुकाना।" वैरागी के विरुद्ध एक दल बन गया जो अपने आपको 'तत्त खालसा' कहता था। वैरागी का विश्वस्त सरदार विनोद सिंह इस का नेता था। बहुत से सिक्ख वैरागी से अलग हो कर उसके शत्रु बन गये और इसका माल

तक लूटने लगे। केवल कुछ ही सिक्ख उसके साथ थे किन्तु हिन्दुओं ने उसका साथ नहीं छोड़ा। इस प्रकार दिल्ली का बादशाह अपनी साम–दाम कूटनीति में सफल हो गया।

बादशाह ने उपयुक्त अवसर जानकर दिल्ली से शाही सेना भेजी जो वैरागी के सैनिकों पर टूट पड़ी मगर वैरागी के सैनिकों ने अद्‌भुत वीरता और साहस दिखाते हुए शाही सेना को मूली–गाजर की तरह काट कर खदेड़ दिया। तत्त खालसा के साथ न होने पर भी वैरागी की यह वीरता देखकर बादशाह को असीम आश्चर्य हुआ। उसने विचार किया कि वैरागी की शक्ति तभी नष्ट की जा सकेगी जब तत्त खालसा को अपने साथ लिया जायेगा। उसने शीघ्र ही कूटनीति से खालसा के नाम एक पत्र भेजा –

"खालसा मेरे साथ शत्रुता दूर कर लें। बाबर और बाबा एक ही बात है। वैरागी फसाद की जड़ है। वह तो गद्दी पर बैठना चाहता है। उसने माता का अपमान किया है। इस विष–वृक्ष को उखाड़ देना चाहिए। आप अमृतसर बैठे बिठाए दस हज़ार मुझसे ले लो और सन्धि कर लो।" पत्र मिलने पर सिक्ख सन्धि के लिए तैयार हो गए। वैरागी चकित था कि बादशाह को इतनी सफलता कैसे प्राप्त हो गई। वैरागी दल के विरुद्ध सिक्ख पृथक हो गए तथा एक दूसरे को नष्ट करने के लिए तैयार हो गये।

इस घटना से हमें यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए कि थोड़ी सी मज़हबी भावना देश की एकरुपता के मार्ग में कितनी बड़ी रुकावट उत्पन्न कर सकती है। गुरुओं ने अपना कार्य धार्मिक रूप से आरम्भ किया। हिन्दू धर्म स्वतन्त्रता के आन्दोलन में गुरुओं ने कुर्बानियाँ दीं। परन्तु शत्रुओं की चाल को न समझते हुए इनके अनुयायियों ने एक मज़हबी अड़चन पैदा कर ली और कहा कि वैरागी का साथ तब तक न हो जब तक वह अमृत चखकर नियमेन सिक्ख न बन जाए। इससे प्रकट होता है

वैरागी की इच्छा व श्रद्धा को जाने बिना उसका अमृत चखना इतना आवश्यक बन गया जिसके आगे सिक्ख आंदोलन का नाश भी कुछ मायने न रखता था। छोटी सी विभिन्नता को सामने लाकर बने बनाए काम को नष्ट कर दिया गया।

राजनीति हिन्दू–धर्म का एक बड़ा भारी भाग है। इस लिए धर्म के तंग दायरे से ऊपर होने से हिन्दू स्वभावतः समस्त देश के हित में प्रयत्नशील रहे हैं। यद्यपि गुरुओं के आन्दोलन ने इस देश के लिए हित किया तो भी बाद में पंथ के तंग दायरे में घिरकर कुछ सिक्ख वैरागी के विरोध में तैयार हो गये। वैरागी सच्चा हिन्दू था। मज़हबी तंगदिली से ऊपर हो कर वह देश को एक जाति बनाना चाहता था। मज़हबी पक्षपात और तंगदिली के विरुद्ध उसने युद्ध किया, किन्तु जब वैरागी को इस पर विजय प्राप्त हो गई तब उसके सिक्ख साथियों के अन्दर उसी प्रकार की मज़हबी तंगदिली ने डेरा जमा लिया और हिन्दू साम्राज्य की स्थापना होते–होते रह गई।

वैरागी के लिये यह समय बहुत संकटमय था। जो मित्र सहायक थे वह शत्रु से मिल गये परन्तु भारत के लिए यह समय और भी अधिक नाजुक था। श्रेष्ठ लोगों का लक्ष्य लोभ के बिना अपने कर्त्तव्य का पालन करना होता है वे कर्म करते हार–जीत का विचार नहीं करते। जीवन के अंत में उन्हें कोई चिन्ता नहीं सताती, वे अमर हो जाते हैं। किन्तु ऐसे अवसर जातियों के जीवन में एक बार ही आते हैं और ये जाति को उन्नति के शिखर पर ले जाते हैं या गड्डे में गिरा देते हैं। फिर भी वैरागी ने साहस करके देश व जाति के लिये लाहौर पर आक्रमण करने का निश्चय किया। लाहौर के शासकों को तत्त खालसा ने सहायता की प्रतिज्ञा की थी, जिन्होंने पाँच हज़ार खालसा मीरसिंह के नेतृत्व में भेजे। वैरागी के सैनिक बड़ी वीरता से लड़े परन्तु शत्रु ने खालसा सेना को आगे कर दिया। इससे वैरागी का दिल टूट गया। जिन लोगों के साथ मिल

कर उन्होंने वर्षों तक कई लड़ाइयों में तलवार चलाई थी, अब उन पर तलवार का वार करना उनके लिए आत्मा के विरुद्ध असह्य हो गया।

वैरागी की सेना ने युद्ध क्षेत्र से कदम हटा लिया और गुरदासपुर वापस आ पहुँची। यह हार ऐसी थी जिसमें प्राण हानि तो बहुत न हुई परन्तु देश का भाग्य फूट गया। सम्वत् 1775 की यह घटना इतिहास में स्मरणीय रहेगी। बादशाह को असीम प्रसन्नता हुई कि उसका जादू चल गया। उसने खालसा के साहस तथा वीरता की बहुत प्रशंसा की और माताओं (गुरु पत्नियों) को बहुत सा धन दिया।

वैरागी ने सिक्खों को लिखा – "तुम धोखे में आ गये हो। गुरु गोविन्द सिंह के उपदेश को तुमने मिट्टी में मिला दिया है। हमारे शत्रु फूट डलवाकर हमें नष्ट कर देंगे। सोचो यह समय फिर नहीं लौटेगा। मैं तो साधु हूँ, मेरा क्या बिगड़ेगा? मुग़ल तुम्हारे मज़हब को और तुम्हें नष्ट कर देंगे। तुम्हारा सर्वस्व जाता रहेगा। अब भी समझ जाओ और शत्रु का साथ छोड़ दो। आओ शत्रु से निपट लें। फिर आपस में लड़ेंगे"।

खालसा पत्र पा कर चुप हो गये उनके मन में विचार उत्पन्न हुआ कि हम क्या कर रहे हैं? परन्तु किसी में बोलने का साहस न हुआ। अन्त में मुग़लों के बहकाये हुए निहंग सिक्खों ने उत्तर दिया – इसने गुरु का वचन टाल दिया, इसके साथ हमारा मेल कैसा?" वैरागी का यह प्रयत्न भी निष्फल गया। उसने कहा– "मैंने तो क्षत्राणी राजपूतनी के पेट से जन्म लिया है, अकेले ही देखूंगा मैं क्या कर सकता हूँ।" **इतनी यातनाओं में से गुजरने पर भी जिसमें दुष्टों के दमन तथा श्रेष्ठों में अमन के लिए आशा की ज्योति जलती रही, वह वीर–क्षत्रिय मानव जाति की पूजा का पात्र है। वैरागी जाति का पहला सपूत था जिसने सदियों की दासता के पश्चात् पहली बार स्वतन्त्रता की पताका हाथ में ली। यह ऐसे सपूतों में से था जो कभी–कभी संसार में आते हैं और जिन पर हर जाति और देश को गर्व होता है।**

बन्दा ने इतनी विपरीत परिस्थितियों के बावजूद हिम्मत नहीं हारी और कलानौर पर चढ़ाई की फिर स्यालकोट, वजीरा बाद, गुजरात आदि कई नगरों पर कब्जा कर लिया। उसके बाद उसने लाहौर पर आक्रमण करने की योजना बनाई। इस हेतु बन्दा ने गुरदासपुर नागल किले में अपनी फौजें जमा करनी शुरू कर दीं। किसी तरह लाहौर के सूबेदार अब्दुल समन्द खान को इस योजना की भनक लग गई उसने भी लाहौर में फौज जमा करनी आरम्भ की। उधर दिल्ली का बादशाह भी बन्दा की सफलता देख बेचैन हो उठा और अब्दुल समन्द खान को युद्ध के लिए तैयार रहने का हुक्म दिया। गुजरात, अहमदाबाद, औरंगाबाद, आदि से भी फौजों को बुला कर अब्दुल समन्द खान को लाहौर से गुरदासपुर कूच करने का आदेश हुआ। बादशाह की संयुक्त 30 हजार सेना ने गुरदासपुर किले को घेर लिया। बन्दा की फौजों ने बड़ी वीरता से शत्रु का मुकाबला किया और उन्हें काफी नुकसान पहुँचाया। किले के आने–जाने के रास्ते सब बंद हो गये। अन्दर वाले भूख से तंग आकर वैरागी के विरुद्ध शिकायतें करने लगे। बाज सिंह ने सबको आश्वासन देने का भरसक प्रयास किया और कहा कि सब लोगों को वैरागी पर मरते दम तक भरोसा रखना चाहिए। परन्तु इससे सैनिकों की घबराहट दूर नहीं हुई। कुछ सिक्ख पुनः शत्रु से जा मिले, जिन्हें कैद कर लिया गया। भूख और असमर्थता की मार यहाँ तक बढ़ी कि अन्ततः विवश हो कर किले के दरवाजे खोल दिये गये और मुग़ल सेना ने भीतर प्रवेश किया। वैरागी भूख के मारे सूखकर अस्थि पिंजर हो गया था। किन्तु किसी सैनिक को साहस न हुआ कि उसके पास जाए। मरे हुए सिंह के पास जाते हुए भी भय लगता है। मगर वैरागी ने परिस्थिति की विकटता को देखा और अपने आप ही अपना धनुष वाण परे रख दिया। सैनिकों ने उसे ज़ंजीरों से बाँध लिया। **वैरागी एक उज्ज्वल तारे के समान चमकता रहा और चौदह वर्ष पर्यन्त अपने प्रकाश से संसार को प्रकाशित कर के धूमकेतु के समान टूटने को चल दिया।**

बन्दा को लोहे के एक पिंजरे में बंद कर हाथी पर लाद कर सड़क मार्ग से दिल्ली लाया गया। उनके साथ हज़ारों सिक्ख भी कैद किये गये थे। इनमें बन्दा के वे 800 के करीब साथी भी थे जो आरम्भ से ही उनके साथ थे। युद्ध में वीरगति पाये सिक्खों के सिर काटकर उन्हें भाले की नोक पर टाँगकर दिल्ली लाया गया। रास्ते में गर्म चिमटों से बन्दा वैरागी का माँस नोचा जाता रहा। बन्दा बहादुर को उसके साथियों सहित महरौली में ख्वाजा कुतबदीन बख्तयार की दरगाह में लाया गया जहाँ उन्हें कहा गया कि यदि वह इस्लाम मत ग्रहण कर ले तो प्राण बच सकते हैं। इस पर बन्दा ने तिरस्कारपूर्ण उत्तर दिया, **"प्राण हरण करना या दान करना तुम्हारे हाथ में नहीं। तुम हमें कब तक जीवन दान कर सकते हो?"** सब को वध की आज्ञा सुनाई गई। नित्य प्रति एक सौ सैनिकों का वध किया जाने लगा। आठवें दिन वैरागी की बारी आई। बादशाह ने वैरागी से पूछा कि तुम कैसी मौत मरना चाहते हो? वैरागी ने गम्भीरता से उत्तर दिया– **"जैसे तुम्हारी इच्छा हो वैसे मारो। मेरे लिये सब तरह की मौत एक समान है। मैं तो इस शरीर को ही सब दुःखों का मूल कारण समझता हूँ।"**

एक इतिहासकार मुहम्मद हरीसी के अनुसार जिन सिक्खों को शाही सेना ने बन्दी बनाया था, वे बिल्कुल प्रसन्नचित्त थे और उनके चेहरे पर ज़रा भी मायूसी के चिन्ह नहीं थे। उन्हें धर्म छोड़ इस्लाम मत ग्रहण करने का लालच दिया गया। परन्तु एक भी सैनिक टस–से–मस न हुआ। एक अन्य इतिहासकार कफी खान के अनुसार, जिस ने स्वयं यह नरसंहार अपनी आँखों से देखा था, एक छोटे बालक ने भी अपना मत त्याग, माफी लेने से इन्कार करते हुए अपना सिर वध के लिए आगे कर दिया परन्तु अपने साथियों को त्यागना उचित न समझा।

बन्दा को भयभीत करने हेतु उनके पाँच वर्षीय पुत्र अजय सिंह को उनकी गोद में लिटा कर बन्दा के हाथ में छुरा देकर उसको मारने को कहा गया। बन्दा ने इससे इन्कार कर दिया। इस पर जल्लाद ने बच्चे

के दो टुकड़े कर उसके दिल का माँस बन्दा के मुँह में ठूंस दिया, पर वे तो इन सब से ऊपर उठ चुके थे। तत्पश्चात् लोहे की गर्म सलाखों से वैरागी को रह–रह कर मारना आरम्भ किया गया। तपे हुए लाल चिमटों से खींच–खींच कर इसके मांस के लोथड़े बाहर निकाल दिए गये यहाँ तक कि शरीर की हड्डियाँ भी दिखाई देने लगीं। बन्दा के मुख पर खेद का कोई चिन्ह नहीं था। मुख से उफ़ तक न निकली। ऐसा भी कहा जाता है कि इतने कष्ट देने के बाद वैरागी को हाथी से कुचलवा दिया गया। इस प्रकार बन्दा वीर वैरागी अपने नाम के तीनों शब्दों को सार्थक करते हुए निछावर हो गये।

भक्ति प्रकाश के रचयिता स्वामी सत्यानन्द जी महाराज ने बन्दा के अंतिम क्षणों का वर्णन निम्नलिखित पंक्तियों में किया है–

हुआ दिल्ली में जाय कर, बंदी बंदा वीर।
चिमटों से नोचा गया, उस का सर्व शरीर।।
बी–धा काटा वह गया, टूक टूक कर गात।
क्रूर कुकर्मी जल्लाद ने, कर दी उस की घात।।
महा वेदना के समय, डोला न वह महान्।
राम राम जपते तजे, उसने प्यारे प्राण।।

बन्दा की पत्नी को भी शाही सेना ने बन्दी बना लिया था। उन्होंने उसे भी धर्म छोड़ने के लिए बहुत आग्रह किया परन्तु सफल न हो सके। एक दिन प्रातःकाल कैदखाने से उसने छलांग लगा प्राण त्याग दिए और इस प्रकार वह भी बन्दा की तरह किसी लालच में न आकर अमर हो गयी।

बन्दा वैरागी ने 7 जून 1716 को खालसा पंथ की खातिर अपना बलिदान दिया परन्तु बड़े खेद की बात है कि इस अमर बलिदानी को आज उस प्रकार याद नहीं किया जाता जिसके वह हकदार (काबिल) थे। उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि उनकी जीवनगाथा को

आने वाली पीढ़ी को बताया जाए ताकि गुरु नानक व गुरु गोबिन्द सिंह द्वारा प्राप्त संदेशों को उन तक पहुँचाया जा सके और उनके अपनाए मूल्यों से हमारे युवा प्रेरणा प्राप्त कर सकें। आज समय की माँग है कि हमारे देशवासी विशेषकर युवा वर्ग बाबा बन्दा बहादुर के जीवन से शिक्षा प्राप्त कर उसके बताए रास्ते पर चलने का प्रयास करें जो कि देश की अखण्डता व एकता के लिए अति आवश्यक है।

वैरागी की आँख बन्द होनी थी कि सिक्खों की आँख खुल गयी। माया जाल हट गया। उन्हें अब मालूम हुआ कि वे क्या कर बैठे हैं और उन्हें इस करनी का क्या प्रतिफल मिला है। वैरागी की कर्त्तव्यपरायणता का ज्ञान उन्हें अब हुआ परन्तु तब तक बहुत देर हो चुकी थी। शाही सूबेदार अब्दुल समन्द खान खालसा के विध्वंस के नये–नये ढंग सोचने लगा। सन्धि की शर्तों को किनारे रख दिया। सन्धि तो केवल मुग़लों की स्वार्थ सिद्धि के लिये थी। बड़ा भयंकर समय आ गया। किसी एक सिक्ख का सिर काट लाने पर पुरस्कार मिलता था। दस रुपये तक एक सिर का मूल्य हो गया। कई सिक्खों ने भाग कर राजपूतों की रियासतों में आश्रय लिया और कई सिक्ख मारे–मारे जगह–जगह भटकने लगे। गुरुद्वारे उजड़ गये। दीपावली, संक्रान्ति, होली के त्यौहार बन्द हो गये। हिन्दू फिर से मुसलमान बनने लग गये। यहीं से देश का भाग्य फूटा और हिन्दू राज्य स्थापित होते–होते रह गया। यदि उस समय हमारे कुछ लोगों ने दूरदर्शिता का परिचय दिया होता तो आज भारत विश्व के शिखर देशों में होता। उस समय एक ओर तो मुस्लिम साम्राज्य की समाप्ति हो जाती और दूसरी ओर अंग्रेज इस धरती पर शायद राज न कर पाते।

इस विचित्र क्रान्तिकारी योद्धा के जीवन को पढ़ कर यह सिद्ध होता है कि उन्होंने मानवता एवं प्राणीमात्र की रक्षा के लिए अपनी आनन्दमयी समाधि के पूर्ण सुख को छोड़ कर युद्ध भूमि में कठिन से कठिन तप को तपा। अनेक बार शत्रुओं पर

विजय प्राप्त करके भी कभी स्वयं राज न किया। जिनको बार–बार राज दिया वे उसे सम्भालने में असमर्थ थे। पर इतने पर भी अपने स्वभाव को नहीं बदला। भयंकर से भयंकर कष्टों के आने पर भी उसने अपने सिद्धान्तों को तोड़ना तथा कभी झुकना नहीं सीखा। अन्त में अपने ही चन्द लोगों के द्वारा विश्वासघात किये जाने तथा शत्रु सेना के साथ मिल जाने पर भी आत्म रक्षा हेतु, उन पर हथियार चलाना उचित नहीं समझा।

रियासी में स्थित डेरा बाबा बन्दा बहादुर
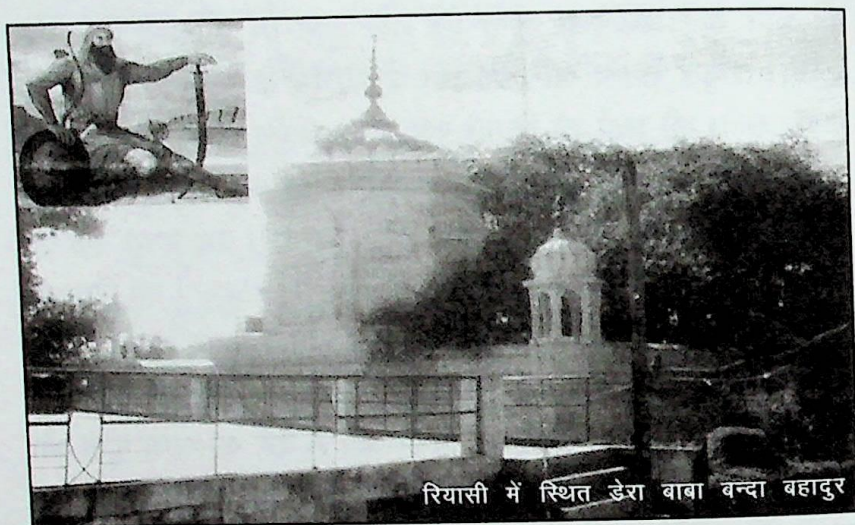
महाराजा गुलाब सिंह

सन् 1846 से 1947 तक जम्मू राज्य डोगरा शासकों के अधीन रहा। इस काल को यदि जम्मू–कश्मीर राज्य के लिए स्वर्णकाल की उपाधि दी जाए तो यह कोई अतिश्योक्ति नहीं कही जा सकती। इस काल के दौरान डोगरा शासकों की अनगिनत महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ रही हैं।

वास्तव में इस स्वर्णमय युग का बीजारोपण महाराजा गुलाब सिंह के जन्म से ही हो गया था। 21 अक्तूबर 1792 को गुलाब सिंह का जन्म मियाँ किशोर सिंह के घर हुआ। जब इनके पिता ने नामकरण के लिये परिवार के पण्डित से पूछा तो पण्डित ने बच्चे के हाथ में गुलाब का फूल देकर उसका नाम गुलाब सिंह रख दिया। गुलाब सिंह के दादा ने उसके पालन पोषण में बड़ी रूचि दिखाई और गुलाब सिंह को अपने भाई मियाँ मोटा के पास भेज दिया जो जम्मू के राजा जीत सिंह का मंत्री था। वहाँ रह कर गुलाब सिंह ने युद्ध कला का प्रशिक्षण लिया।

मात्र 16 वर्ष की आयु में सन् 1808 में सिक्ख शासकों के विरूद्ध गुमट की लड़ाई में गुलाब सिंह को अपनी वीरता का जौहर दिखाने का अवसर मिला। महाराजा रणजीत सिंह के कमांडर–इन–चीफ सरदार हुक्म सिंह गुलाब सिंह की युद्ध कला से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने गुलाब सिंह के शौर्य की गाथा का वर्णन महाराजा रणजीत सिंह से किया। अन्ततः सन् 1810 में गुलाब सिंह को पंजाब के दरबार स्यालकोट में बुला लिया गया।

महाराजा रणजीत सिंह के दरबार में शामिल होने वालों में गुलाब सिंह डोगरा परिवार के सर्वप्रथम सदस्य थे। गुलाब सिंह एवं उसके

भाइयों ध्यान सिंह और सुचेत सिंह ने अपनी वीरता के कारण शीघ्र ही महाराजा की नज़रों में अपना विशेष स्थान बना लिया। हजारा और हाजरू के युद्ध में इन्होंने अपनी बहादुरी का लोहा मनवाया, जिसमें अफगानों को बुरी तरह हार का मुँह देखना पड़ा। यह लड़ाई अटोक के निकट 13 जुलाई 1813 को लड़ी गई। गुलाब सिंह इस लड़ाई में बड़ी बहादुरी से लड़े और उन्होंने एक कुशल सेनापति का प्रदर्शन किया, जिसको देखकर महाराजा ने गुलाब सिंह को जम्वाल केवेलरी का आफिसर कमांडिग बना दिया।

जम्मू की स्थानीय जनता में सिक्ख सैनिकों के दुर्व्यवहार के कारण रोष पैदा होना आरम्भ हो गया, जिस कारण मियाँ डीडो के नेतृत्व में सिक्ख शासकों के विरुद्ध बगावत होने लगी। मियाँ डीडो आये दिन सिक्ख सैनिकों की छावनी पर हमला कर उन्हें काफी हानि पहुँचा रहे थे। मियाँ डीडो सिक्ख सैनिकों की पकड़ में नहीं आ रहे थे क्योंकि स्थानीय जनता का सहयोग एवं यहाँ के सरदारों का भरपूर समर्थन उन्हें मिल रहा था। इस प्रकार मियाँ डीडो सिक्ख शासकों के लिए सिर दर्द बन चुके थे। महाराजा रणजीत सिंह ने इस के लिए गुलाब सिंह को तैयार किया जिसके बदले उसे जम्मू की जागीर देने का वचन दिया गया। गुलाब सिंह के युद्ध कौशल से मियाँ डीडो त्रिकुटा की पहाड़ियों में एक लड़ाई में मारे गये जिस से महाराजा को गुलाब सिंह के रण कौशल पर और अधिक विश्वास हो गया।

गुलाब सिंह ने अपनी युद्ध कुशलता से कई लड़ाइयों का नेतृत्व कर काफी रजवाड़ों को महाराजा रणजीत सिंह की अधीनता स्वीकार करने पर विवश कर दिया; परिणामस्वरूप महाराजा ने 17 जून 1822 में गुलाब सिंह को राजा की उपाधि देकर जम्मू का राज्य प्रदान किया और उन्हें अपनी सेना रखने का अधिकार भी दे दिया।

गुलाब सिंह की शौर्य गाथाएँ अद्भुत एवं अनुपम हैं। जनरल ज़ोरावर सिंह के कुशल सैन्य नेतृत्व में सन् 1818 से 1841 के बीच राजा

गुलाब सिंह ने रियासी, पुंछ, राजौरी, चनैनी, बंदराल, किश्तवाड़, मनकोट, कश्मीर, लद्दाख, बाल्टिस्तान, जंस्कार, सकर्दू, दार्दिस्तान, पश्चिमी तिब्बत और कुछ अन्य क्षेत्र सिक्ख शासकों के लिए जीत कर राज्य की सीमाएं 300 मु. मील तक फैला दीं। देश के इतिहास में गुलाब सिंह अकेला ही ऐसा शासक रहा जिसने भारत की सीमाएँ इतनी दूर–दूर तक फैलाईं। लद्दाख को अपने अधिकार क्षेत्र में लाने से गुलाब सिंह ने देश के इतिहास में अमरता प्राप्त की। राजा गुलाब सिंह ने अपनी सियासी सूझ–बूझ का परिचय दे कर छोटे–छोटे रजवाड़ों को मिला कर जम्मू–कश्मीर राज्य की नींव रखी। ब्रिटिश इंडिया में इतने बड़े क्षेत्रफल का राज्य स्थापित करने का श्रेय राजा गुलाब सिंह को ही प्राप्त है। देश के कई दिग्गज योद्धाओं (जिनमें रानी झांसी, शिवा जी, महाराणा प्रताप आदि शामिल हैं) की भांति महाराजा गुलाब सिंह के युद्ध कौशल को सराहा गया है।

1839 में महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु के उपरान्त सिक्ख शासक अपनी पारिवारिक कलह में उलझ गये। अन्ततः सन् 1846 में जब सिक्ख सेना को अंग्रेज़ी सेना से हार का मुँह देखना पड़ा तो गुलाब सिंह को प्रधान मंत्री नियुक्त किया गया। सिक्ख शासन के प्रधान मंत्री के नाते अंग्रेजों से वार्तालाप कर उन्होंने लाहौर संधि पर हस्ताक्षर किये। गुलाब सिंह ने सिक्ख हकूमत की खोयी मर्यादा को पुनः स्थापित करने में अपनी कुशलता एवं सूझ–बूझ का परिचय दिया। तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिन्ज ने गुलाब सिंह के कुशल नेतृत्व को देखते हुए उन्हें जम्मू–कश्मीर राज्य का महाराजा नियुक्त किया। 16 मार्च 1846 को अमृतसर संधि द्वारा गुलाब सिंह को पूरे कश्मीर राज्य का अधिकार प्राप्त हो गया जिसके लिए उन्हें अंग्रेज़ हकूमत को 75 लाख रूपये देने पड़े। इस प्रकार महाराजा गुलाब सिंह ने पूरे जम्मू–कश्मीर राज्य पर 1846 से 1856 तक राज्य किया। 20 फरवरी 1856 को महाराजा गुलाब सिंह ने राज्य की बाग डोर स्वयं ही अपने बेटे के हाथ सौंप दी जो कि अपने आप में एक अनूठा उदाहरण है। इस महान् शासक का अन्त 30 अगस्त

1858 को 66 वर्ष की आयु में हुआ।

महाराजा गुलाब सिंह ने सन् 1846 से 1856 के बीच राज्य में कई सामाजिक एवं राजकीय सुधार किये। राज्य की सीमा तय होने के बाद अपराध को कठोरता से दबाया गया। कानून व्यवस्था को बहाल करके व्यापार और वाणिज्य को सुरक्षा प्रदान की। इसी बीच बैगारी की प्रथा को सुधारा गया। शाल उद्योग को पुनर्गठित करते हुए बुनकरों को दासवृत्ति से मुक्त करवाया गया। राज्य में विशेषकर जम्मू और श्रीनगर में कई मंदिरों का निर्माण किया एवं इनकी देख रेख के लिए धर्मार्थ ट्रस्ट की स्थापना की। महकमा माल एवं पुलिस प्रशासन का पुनर्गठन किया गया। राज्य के नगरों में राशन सप्लाई की परियोजना का प्रारम्भ हुआ। हिंदुओं के तीर्थ–स्थल परमण्डल में नये कस्बे के निर्माण का श्रेय महाराजा को ही जाता है।

इतिहासकार के. एम. पानिकर ने गुलाब सिंह को 19वीं शताब्दी के भारत का महान् सपूत बताया है। वर्तमान जम्मू–कश्मीर राज्य उन्हीं की देन है।

मियाँ डीडो - जम्मू का एक अद्भुत योद्धा

मियाँ डीडो का जन्म जम्मू से 15 कि.मी. दूर नगरोटा के जगती गाँव में मार्च 1780 ई. में हुआ। उसके पिता मियाँ हज़ारी राजा हरि देव के पाँचवीं नसल में से थे, जिन्होंने 17वीं शताब्दी में जम्मू पर हकूमत की। राजा हरि देव ने मियाँ हज़ारी के पूर्वजों को जागीर के रूप में कुछ गाँव प्रदान किये। मियाँ डीडो यद्यपि स्कूली शिक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त न कर सका, मगर वह बचपन से ही बहुत होशियार व समझदार था। उसने तलवारबाज़ी में कम आयु में ही निपुणता प्राप्त कर ली। क्रान्तिकारी विचारधारा रखने के कारण उसने अपनी सोच वालों की टोली बना ली और गरीबों की सहायता करनी प्रारम्भ की। इस हेतु उसने लोगों के आपसी झगड़े मिटा कर उन्हें कोर्ट कचहरी से मुक्ति दिलाने का प्रयास किया। धीरे–धीरे उसके साथ कई नौजवान शामिल हो गये और इस प्रकार उसका प्रभाव जम्मू से बाहर रियासी और ऊधमपुर तक फैल गया।

उस काल में जम्मू का शासक राजा जीत सिंह एक नाकाबिल एवं कमज़ोर राजा था। असल में उसका शासन मियाँ मोटा सिंह चला रहा था। राजा जीत सिंह की रानी बन्दराली मियाँ मोटा सिंह से नफरत करती थी और उसे शासन से हटाना चाहती थी क्योंकि उसकी दृष्टि में मियाँ मोटा जीत सिंह के पिता और भाई का कातिल था।

सन् 1808 में सिक्ख सैनिकों ने स्यालकोट के हुक्म सिंह के नेतृत्व में जम्मू की ओर कूच किया और सतवारी तक पहुँच गये। डरपोक राजा जीत सिंह घबरा गया परन्तु मियाँ मोटा ने हिम्मत बाँध कर डुग्गर प्रदेश की जनता को एक जुट होकर सिक्ख सेना का मुकाबला करने हेतु आह्वान किया। जम्मू के लोग बड़ी गरमजोशी से उस अभियान में आगे

आये। **मियाँ डीडो, जो कि अब बड़ा होकर एक योद्धा के रूप में उभरा था, ने जम्मू के राजा की ओर से इस लड़ाई में भाग लिया।** जम्मू के डोगरों ने इस लड़ाई में बड़ी बहादुरी का परिचय दिया और सिक्ख सैनिकों को युद्ध भूमि से पीछे हटने पर विवश कर दिया। परन्तु दुर्भाग्यवश इस जीत के बावजूद राजा जीत सिंह ने अपनी दुर्बलता का परिचय दे कर सिक्ख शासकों से संधि कर ली। राजा जीत सिंह और मियाँ मोटा स्यालकोट में महाराजा रणजीत सिंह को मिले और लाहौर की अधीनता स्वीकार कर ली। राजा ने वार्षिक नज़राना 73000/– रुपये भी देना मान लिया। राजा के अधिकार भी सीमित कर दिये गये परन्तु मियाँ मोटा का प्रभुत्व कायम रहा। रानी बन्दराली जो मियाँ मोटा से छुटकारा पाना चाहती थी, ने सिक्ख शासकों के जम्मू में नियुक्त प्रतिनिधि से मिल कर साँठ–गाँठ की और मियाँ मोटा को मरवा दिया।

सन् 1816 में महाराजा रणजीत सिंह ने राजा जीत सिंह को गद्दी से उतार कर जम्मू परगना को राजकुमार खड़क सिंह के अधीन कर दिया। मियाँ डीडो ने (जो अब तक रियासी और ऊधमपुर तक अपना प्रभाव बना चुका था) लाहौर दरबार के इस निर्णय के विरुद्ध विद्रोह किया। इस बगावत को दबाने हेतु जम्मू के कई इलाकों में सिक्ख सैनिकों को भेजा गया परन्तु वे सफल न हुए। डीडो अपने साथियों के साथ खुले आम विद्रोह करते हुए अमीर लोगों को लूट कर गरीबों की सहायता करता और इस प्रकार उसकी लोकप्रियता काफी बढ़ने लगी। दूसरी ओर जम्मू की स्थानीय जनता में सिक्ख सैनिकों के दुर्व्यवहार के कारण रोष पैदा होना आरम्भ हो गया, जिस कारण मियाँ डीडो के नेतृत्व में सिक्ख शासकों के विरुद्ध बगावत होने लगी। मियाँ डीडो आये दिन सिक्ख सैनिकों की छावनी पर हमला कर उन्हें काफी हानि पहुँचा रहे थे। उसके साथी चोरी छुपे सिक्ख सैनिकों पर हमला कर जंगलों में भाग जाते। मियाँ डीडो सिक्ख सैनिकों की पकड़ में नहीं आ रहा था क्योंकि स्थानीय जनता का सहयोग एवं यहाँ के सरदारों का भरपूर समर्थन उन्हें मिल रहा था। इस प्रकार मियाँ डीडो सिक्ख शासकों के लिये सिर दर्द बन चुका था।

मियाँ डीडो साधारण जनता के प्रति अति दयावान था जो भी उनके पास जाता वह उसकी मदद करता। एक बार की घटना है कि पुरानी मण्डी चौकी के अधिकारी गेंडा सिंह ने एक अविवाहित लड़की का अपहरण कर लिया। लड़की के पिता ने अधिकारियों से सहायता की याचना की परन्तु गेंडा सिंह के विरुद्ध कोई कार्यवाही करने की हिम्मत न जुटा सका। तब उसने मियाँ डीडो से सहायता की गुहार लगाई। मियाँ डीडो ने रात के अंधेरे में अपने साथियों सहित पुरानी मण्डी चौकी का घेराव किया और गेंडा सिंह को ललकारा। जैसे ही गेंडा सिंह मियाँ डीडो के सामने आया उसी समय मियाँ डीडो ने उसका कत्ल कर दिया और लड़की को निकाल, उसके माता पिता को सौंप दिया। इस घटना से मियाँ डीडो के प्रति जनता के दिलों में आदर और भी बढ़ गया।

लाहौर दरबार के एक आदेशनुसार महाराजा के सिवाय प्रजा का कोई भी आदमी सफेद बाज (पक्षी) नहीं रख सकता था। मियाँ डीडो ने सरकारी आदेश की अवहेलना करते हुए सफेद बाज का एक जोड़ा पाल रखा था। जब महाराजा को इस बात का पता चला तो वह बड़ा क्रोधित हुआ और उसने नैन सिंह को कुछ सैनिकों के साथ मियाँ डीडो को गिरफ्तार करने व लाहौर दरबार में हाज़िर करने का हुक्म दिया। इत्तफाक से जब सैनिक जगती गाँव पहुँचे तो मियाँ डीडो अपने घर पर ही था। नैन सिंह के सैनिकों ने मियाँ डीडो का घर घेर लिया और उसे आत्मसमर्पण करने को कहा। बाहर निकलने का कोई उपाय न देखते हुए मियाँ डीडो अपने आपको सैनिकों के हवाले करने के लिए मान गये परन्तु खाने के लिए कुछ समय की मोहलत माँगी जिसको नैन सिंह ने स्वीकार कर लिया। डीडो ने नैन सिंह व उसके सैनिकों के लिये भी खाने की सामग्री बाहर रखवा दी ताकि वह अपने लिये भी खाना पका सकें जो अभी तक भूखे थे। डीडो मकान के अन्दर चला गया और पिछली दीवार में एक बड़ा छेद कर अपनी पत्नी व पक्षियों के साथ घर से भाग निकला। बाहर जा अपनी तलवार निकाल नैन सिंह व उसके सैनिकों पर टूट पड़ा जो अपने लिये खाना बनाने में लगे हुए थे। डीडो उनमें कुछ

को मार कर व अन्य को ज़ख्मी कर वहाँ से भागने में सफल हो गया। नैन सिंह खाली हाथ लाहौर दरबार में लौट आया जिससे महाराजा रणजीत सिंह और क्रोधित हो गया।

एक अन्य घटनाक्रम में महाराजा रणजीत सिंह ने रियासी के मियाँ दिवान सिंह को हटा कर सन् 1817 में रियासी की जागीर गुलाब सिंह के अधीन कर दी। मियाँ डीडो ने मियाँ दिवान सिंह के बेटे मियाँ भूप देव को महाराजा के खिलाफ विद्रोह करने में अपना पूरा समर्थन देने का प्रस्ताव किया जिस कारण गुलाब सिंह अप्रसन्न हो गया।

इसी प्रकार एक दूसरे अवसर पर सन् 1819 में पंडित बीरबल ने महाराजा रणजीत सिंह के लिये बनिहाल के मार्ग द्वारा कश्मीरी फलों के टोकरे नज़राने के तौर पर रवाना किये। रास्ते में मियाँ डीडो व उसके साथियों ने सारे फल लूट लिये और इसके स्थान पर फलों के टोकरों में घास भर दिया। यह लाहौर दरबार के लिए एक खुली चुनौती थी।

महाराजा रणजीत सिंह को यह अहसास हो गया कि बाहर के किसी भी अधिकारी से मियाँ डीडो को पकड़ पाना संभव नहीं है। उन्होंने अनुभव किया कि कोई स्थानीय व्यक्ति ही मियाँ डीडो को गिरफ्तार कर या मार कर इस विद्रोह को दबा सकता है। गुलाब सिंह ने इस कार्य के लिये अपनी सेवाएँ अर्पित कीं व महाराजा से आज्ञा चाही। गुलाब सिंह की इस पेशकश के पीछे उसके अपने व्यक्तिगत कारण भी थे। मियाँ डीडो अपने आप को रणजीत देवी की सन्तान मानते थे और इसलिये वह जम्मू के शासकों के शत्रु समझे जाते थे। गुलाब सिंह को जम्मू की जनता में मियाँ डीडो की लोकप्रियता के बारे में पता था और इसलिये उसका मानना था कि उसे समाप्त करके ही शांति स्थापित की जा सकती है। गुलाब सिंह ने आते ही मियाँ डीडो की तलाश शुरू कर दी। उसे पता चला कि जहाँ भी डीडो जाता, पहाड़ के लोग उसे भोजन व ठहरने का स्थान प्रदान करते हैं। इसलिए चतुर डोगरा कमांडर भेस बदल कर (मियाँ डीडो बन) गाँव–गाँव स्वयं जाने लगा और जहाँ लोग

स्वागत हेतु आगे आते उन्हें दण्डित किया जाता।

शीघ्र ही लोग मियाँ डीडो की मेहमाननवाज़ी से परहेज़ करने लगे क्योंकि उन्हें डर था कि या यह कोई भेस बदल कर आया है या उन्हें मियाँ डीडो की सहायता करने पर दण्डित होने का भय था। जब मियाँ डीडो को बाहर से सहायता मिलनी बन्द होने लगी, वह मजबूरन अपने गाँव जगती लौट आया। जब गुलाब सिंह को यह समाचार मिला उसने व उसके सैनिकों ने उसके गाँव की ओर कूच कर मियाँ डीडो के घर को घेर लिया। तब तक मियाँ डीडो त्रिकुटा पहाड़ियों की ओर निकल चुका था। उसके 90 वर्षीय पिता मियाँ हज़ारी (जो उस समय घर पर थे) बड़ी वीरता से तलवार हाथ में ले कर घर से बाहर आ गये। बूढ़े व्यक्ति पर सैनिकों ने धावा बोल दिया और अतर सिंह कलाल ने बड़ी बेदर्दी से मियाँ डीडो के पिता का कत्ल कर दिया। अतर सिंह डोगरा कमांडर का लेफटीनेन्ट था। सिक्ख सैनिकों ने फिर त्रिकुटा पहाड़ियों की ओर कूच कर मियाँ डीडो को सांझी–छत की चोटी पर घेर लिया गया। गुलाब सिंह मियाँ डीडो को जीवित पकड़ना चाहता था। उसने डीडो को आत्म समर्पण के काफी अवसर प्रदान किये। परन्तु डीडो ने न केवल इस प्रस्ताव को ठुकराया बल्कि एक अवसर पर वह इतनी फुर्ती से निकला कि उसकी तलवार अतर सिंह के सिर पर इतने जोर से लगी कि उसका पूरा शरीर ही कट गया। तब उसने गुलाब सिंह को अपशब्द कहे और उसे खुली चुनौती दी कि यदि वह बहादुर है तो उसके साथ सामने आ कर युद्ध करे। परन्तु गुलाब सिंह अतर सिंह की भांति मरना नहीं चाहता था। डीडो की खोफनाक तलवार ने गुलाब सिंह की पूरी सैनिक टुकड़ी को दूर रखा हुआ था अन्त में एक सैनिक द्वारा दूर से ही विद्रोही नेता पर गोली साध कर उसे मौत की नींद सुला दिया।

ऐसा भी कहा जाता है कि जब गुलाब सिंह को महाराजा रणजीत सिंह ने मियाँ डीडो के विद्रोह को कुचलने का काम सौंपा तो उसे इस कार्य के सम्पूर्ण होने पर जम्मू की जागीर देने का वचन दिया। गुलाब

सिंह ने आते ही डीडो के कुछ साथियों को जो जेल में बंद थे, मुक्त करवाया। उसने डीडो के पास यह संदेश भेजा, "हम एक ही बिरादरी के हैं अतः हमें एक दूसरे के विरुद्ध नहीं लड़ना चाहिए। हम भी तुम्हारी तरह जम्मू की आज़ादी चाहते हैं। किन्तु हमारा मार्ग अलग है तुम भी हमारे मार्ग पर आ जाओ और महाराजा की अधीनता स्वीकार कर लो।" मियाँ डीडो ने गुलाब सिंह का प्रस्ताव नहीं माना। अंत में गुलाब सिंह ने मियाँ डीडो के विरुद्ध सैनिक अभियान आरम्भ कर दिया।

एक और सूत्र के अनुसार भरथल गांव में मियाँ डीडो का ननिहाल था। गुलाब सिंह ने मियाँ डीडो के मामा को अपने पक्ष में किया हुआ था। गुलाब सिंह ने उसी को आगे कर पीछे से मियाँ डीडो पर गोली चलवाई क्योंकि गुलाब सिंह को विश्वास था कि आमने–सामने की लड़ाई में मियाँ डीडो से जीत पाना संभव नहीं है। गोली मियाँ डीडो की छाती पर लगी और वह चट्टान से गिर कर पहाड़ी ढलान पर गिर पड़ा। मियाँ डीडो के वध के बाद जम्मू परगना में कई वर्षों से चल रहा विद्रोह शांत हो गया।

मियाँ डीडो एक बहादुर और निडर व्यक्ति था। गुलाब सिंह को भी उसकी मृत्यु पर शोक हुआ। मियाँ डीडो ने अपने पीछे अपनी पत्नी व दो लड़कों को छोड़ा। बड़ा लड़का बसन्त सिंह 16 वर्ष का व छोटा बेटा मियाँ गोसांई 1½ वर्ष का था। गुलाब सिंह ने दोनों को अपनी शरण में ले लिया और विधवा के लिए भत्ता भी मंजूर किया।

ज़ोरावर सिंह
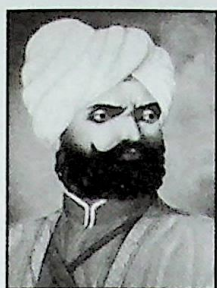
हिमाचल प्रदेश के हमीरपुर जनपद के अंतर्गत अंसरागांव में कन्हुरिया परिवार में 13 अप्रैल 1786 को एक महान् योद्धा का जन्म हुआ। आरम्भ से ही यह बालक बड़ा उत्साही, साहसी और बहुत ही महत्वाकांक्षी था। युवा अवस्था में यह लाहौर आया और महाराजा रणजीत सिंह की सेना में भर्ती हो गया। परन्तु कुछ समय बाद ही उसने खालसा शासकों की नौकरी छोड़ दी और जम्मू आ गया। सन् 1817 में ज़ोरावर सिंह की भेंट गुलाब सिंह से हुई। वह इसके व्यक्तित्व से बड़ा प्रभावित हुआ। गुलाब सिंह ने उसे अपनी सेना में भर्ती कर रियासी भेज दिया।

रियासी में ज़ोरावर सिंह ने बहुत ही अच्छा काम किया। उसने भीमगड़ दुर्ग को विद्रोहियों से बचाया। सेना में राशन की अनियमितताओं को दूर कर के पैसों की बचत की। गुलाब सिंह ने उसकी कार्य कुशलता को देखते हुए सन् 1820 में उसे 'भार बरादरी' विभाग का निरीक्षक नियुक्त किया। सन् 1821 में गुलाब सिंह ने किश्तवाड़ पर अधिकार करने के बाद 1823 में ज़ोरावर सिंह को इस क्षेत्र का प्रशासक नियुक्त किया।

किश्तवाड़ की सीमा लद्दाख राज्य को स्पर्श करती थी। अतः किश्तवाड़ में रहते हुए ज़ोरावर सिंह को सूचना मिली कि लद्दाख के दरबार के कुछ लोग वहाँ के राजा नामग्याल से नाराज़ हैं। राज परिवार भी धड़ों में विभाजित है, जिसके कारण लद्दाख में अशांति है।

ज़ोरावर सिंह ने लद्दाख की स्थिति के बारे में गुलाब सिंह को अवगत कराया और लद्दाख पर आक्रमण करने की अनुमति माँगी। गुलाब सिंह ने सारी परिस्थिति को भाँपते हुए ज़ोरावर सिंह को अनुमति प्रदान कर दी।

जुलाई 1834 में ज़ोरावर सिंह ने अपने साथ पाँच हज़ार डोगरा सैनिकों को ले लद्दाख की ओर कूच किया। डोगरा सेना सुरू घाटी को पार करके लद्दाख की सीमा में जैसे ही दाखिल हुई, दोरजी नामग्याल के नेतृत्व में लद्दाखी सेना इसका मुकाबला करने सामने पहुँच गई । 16 अगस्त 1834 में ब्रोतो के स्थान पर दोनों सेनाओं के बीच घमासान युद्ध हुआ परन्तु अन्त में लद्दाखी सेना परास्त होकर भाग गई।

उस लड़ाई के बाद ज़ोरावर सिंह ने पुरिंग प्रांत के साकू कार्त्से, सुरू और शागकार के दुर्गों पर अधिकार किया। उसकी फौजें निरंतर आगे बढ़ती गईं। फिर सोड़ और पशुकन नगरों पर भी अधिकार प्राप्त कर के लद्दाख के राजा को संदेश भेजा। लद्दाख के राजा ने संधि करने के स्थान पर युद्ध करना स्वीकार किया, परन्तु उसे पराजय का मुहँ देखना पड़ा। इस युद्ध के उपरान्त ज़ोरावर सिंह और लद्दाख के राजा के मध्य एक संधि हुई। इस संधि के अतंर्गत लद्दाख के राजा ने जम्मू के राजा की अधीनता स्वीकार कर, पचास हज़ार रुपये लड़ाई का हरज़ाना और 20 हज़ार रुपये वार्षिक नज़राना देना मान लिया। इस संधि के बाद डोगरा सेना वापस लौट आई।

डोगरा सेना के लौटने के तुरन्त बाद लद्दाख के लोगों ने विद्रोह कर दिया। ज़ोरावर सिंह को जैसे ही इस बात की सूचना मिली वह शीघ्र ही पाडर के मार्ग से लेह पहुँच गया और वहाँ जा कर विद्रोहियों को दंडित किया। लद्दाख के राजा ने ज़ोरावर सिंह से क्षमा याचना की। किन्तु इस बार ज़ोरावर सिंह ने उसे क्षमा नहीं किया और नामग्याल को गद्दी से हटा कर लद्दाख के राजकवि स्टाड को गद्दी पर बैठा दिया। ज़ोरावर सिंह ने लेह में एक दुर्ग बनवाया और उसकी रक्षा के लिये तीन सौ डोगरा सैनिक नियुक्त किये।

स्टाड एक अच्छा प्रशासक सिद्ध न हुआ। उसके समय में जंस्कार में विद्रोह हुआ। डोगरा सेना ने इस विद्रोह का दमन तो किया परन्तु ज़ोरावर सिंह ने स्टाड की असफलता को देखते हुए उसे गद्दी से हटा

कर शेशपाल को गद्दी पर बैठाया। 1840–41 में वहाँ फिर विद्रोह भड़का जिसको दमन करने हेतु ज़ोरावर सिंह को स्वंय ही अपनी सेनाओं का नेतृत्व करना पड़ा।

लद्दाख विजय के उपरान्त ज़ोरावर सिंह ने बलतिस्तान की ओर ध्यान दिया। बलतिस्तान में उन दिनों अहमद शाह राज्य करता था। ज़ोरावर सिंह ने बलतिस्तान के राजा अहमद शाह को गद्दी से उतार कर उसके बेटे मुहम्मद शाह को गद्दी पर बैठाया, जिसने डोगरा राजा गुलाब सिंह की अधीनता स्वीकार कर सात हज़ार रुपये वार्षिक नज़राना देना मान लिया।

इसके उपरान्त ज़ोरावर सिंह ने तिब्बत की ओर कूच किया। आठ हजार तिब्बती सैनिकों ने मानसरोवर के पार परखा में मुकाबला किया परन्तु वे पराजित हुए। ज़ोरावर सिंह तिब्बत, भारत तथा नेपाल के संगम स्थल तकलाकोट तक जा पहुँचे। इसी बीच दस हज़ार तिब्बती सैनिकों की तीन सौ डोगरा सैनिकों से मुठभेड़ हुई और राक्षसताल के पास वे सब मारे गये। अब ज़ोरावर सिंह स्वयं आगे बढ़े। वह तकलाकोट को युद्ध का केन्द्र बनाना चाहते थे परन्तु तिब्बतियों की विशाल सेना ने 10 दिसम्बर 1841 को टोयो में इन्हें घेर लिया। दिसम्बर की भीषण ठण्ड में तीन दिन तक घमासान युद्ध चला। 12 दिसम्बर को ज़ोरावर सिंह को गोली लगी और वह घोड़े से गिर पड़े, जिससे डोगरा सेना तितर–बितर हो गई। तिब्बती सेना में ज़ोरावर सिंह का इतना भय था कि उनके शव को स्पर्श करने का भी वे साहस नहीं कर पा रहे थे। बाद में उनके अवशेषों को चुन कर एक स्तूप बना दिया गया। तिब्बती आज भी इस स्तूप की पूजा करते हैं। इस प्रकार ज़ोरावर सिंह ने भारत की विजय पताका भारत से बाहर तिब्बत तथा बलतिस्तान तक पहुँचायी।

ज़ोरावर सिंह डुग्गर प्रदेश का एक महान् सेना नायक था। वह पहला एक ऐसा सेनापति था जिसने भारत की सीमा को मान–सरोवर तक बढ़ाया। उसने हिमालय पहाड़ में स्थित

पहाड़ी राज्यों को भौगोलिक दृष्टि से जोड़ा और देश के भूगोल को ही बदल कर रख दिया। कई इतिहासकार ज़ोरावर सिंह की तुलना नेपोलियन से करते हैं। जो भी हो इस धरती का यह महान् सपूत एक बेजोड़ सेनापति था।
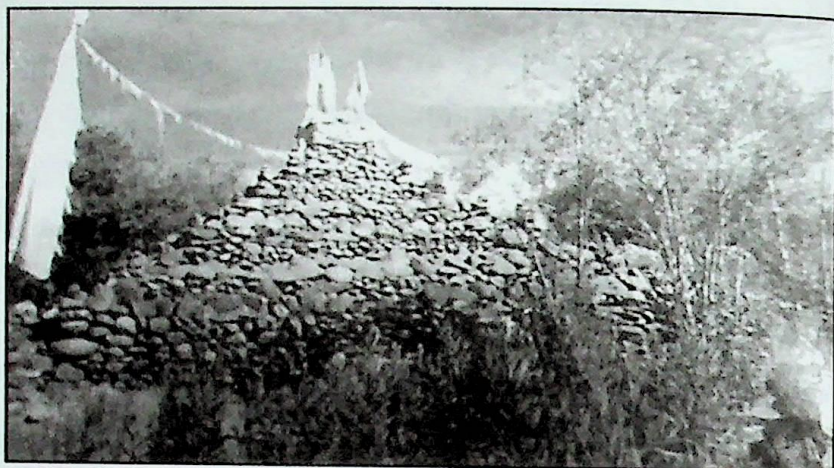
(लद्दाख–तिब्बत सीमा पर ज़ोरावर सिंह का स्तूप)

वज़ीर राम सिंह पठानिया

अंग्रेजी साम्राज्य के विरूद्ध भारत के चप्पे–चप्पे पर वीरों ने संग्राम किया है। हिमाचल प्रदेश की नूरपूर रियासत के वज़ीर राम सिंह पठानिया ने सन् 1845 में ही स्वतन्त्रता का बिगुल फूंक दिया था। इनका जन्म वज़ीर शाम सिंह एवं इन्दरो देवी के घर हुआ था। पिता के बाद इन्होंने वज़ीर का पद संभाला। उस समय रियासत के राजा वीर सिंह का देहान्त हो चुका था। उनका बेटा जसवन्त सिंह उस समय केवल दस वर्ष का था। प्रजा जसवन्त सिंह को गद्दी पर बैठाना चाहती थी।

अंग्रेज़ों ने जसवन्त सिंह को नाबालिग बता कर राजा मानने से इन्कार कर दिया तथा रियासत की बागडोर अपने हाथ में ले ली। शाम सिंह एक अन्य मंत्री को लेकर अंग्रेज़ अधिकारियों से मिले ताकि जसवन्त सिंह को मान्यता मिल सके। शाम सिंह के नेतृत्व में प्रतिनिधि मंडल का अंग्रेजों ने काफी उपहास व अपमान किया और उनका निवेदन ठुकरा दिया। वज़ीर शाम सिंह का पुत्र राम सिंह उस समय छोटा था। जब उसने अपने पिता शाम सिंह का अंग्रेज़ों द्वारा किये गये अपमान के बारे में सुना तो वह बौखला गया। राम सिंह ने अंग्रेज़ों की इच्छा के विपरीत जसवंत सिंह को नया राजा घोषित कर दिया। उन्होंने जम्मू से मन्हास, जसवां से जसरोटिये, अपने क्षेत्र से पठानिये और कटोच राजपूतों को लाया। पजांब से सरनाचन्द 400 हरिचन्द राजपूतों को ले आया। 14 अगस्त 1845 की रात में उसने शाहपुर कण्डी दुर्ग पर हमला बोल दिया। वह दुर्ग उस समय अंग्रेजों के अधिकार में था। भारी मारकाट के बाद 15 अगस्त को राम सिंह ने अंग्रेज़ी सेना को खदेड़ कर दुर्ग पर अपना झण्डा लहरा दिया। इसके बाद राम सिंह ने सब ओर ढोल पिटवाकर मुनादी करवाई कि नूरपुर रियासत से अंग्रेज़ी राज्य

समाप्त हो गया। रियासत का राजा जसवन्त सिंह है और मैं उनका वज़ीर हूँ। इस घोषणा से पहाड़ी राजाओं में उत्साह की लहर दौड़ गयी। वे सब भी राम सिंह के झण्डे के नीचे आने लगे। इन्दरो देवी, मन्हास–राजपूत माता का पुत्र होने के कारण भी काफी राजपूतों का सहयोग उसे मिलने लगा। लेकिन अंग्रेज़ों ने और फौज लेकर फिर से दुर्ग पर धावा बोल दिया। शास्त्रास्त्र के अभाव में राम सिंह को दुर्ग छोड़ना पड़ा, पर उन्होंने हिम्मत नहीं हारी।

माओ कोट के जंगलों में जाकर उसने अंग्रेज़ों के विरुद्ध गुरिल्ला युद्ध जारी रखा। वे पंजाब के रास्ते गुजरात गये और रसद लेकर लौटे। उसकी सहायता से इन्होंने फिर दुर्ग पर हमला कर अधिकार प्राप्त कर लिया। अंग्रेज़ी सेना पठानकोट भाग गई। यह सुनकर जसवाँ, दातापुर, कांगड़ा तथा ऊना के शासकों ने भी स्वंय को स्वतंत्र घोषित कर दिया, पर अंग्रेज़ भी कम नहीं थे, उन्होंने कोलकत्ता से कुमुक बुलाकर फिर हमला बोल दिया। रामसिंह पठानिया को एक बार फिर दुर्ग छोड़ना पड़ा। उन्होंने राजा शेरसिंह के 400 वीर सैनिकों की सहायता से 'डल्ले की धार' पर मोर्चा बाँधा। अंग्रेजों ने 'कुमणी दे बैली' में डेरा डाल दिया।

दोनों दलों में मुकेसर और मरीकोट के जंगलों में भीषण युद्ध हुआ। रामसिंह पठानिया की 'चण्डी' नामक तलवार 24 सेर वजन की थी। उसे लेकर वे जिधर घूमते, उधर ही अंग्रेजों का सफाया हो जाता। भीषण युद्ध का समाचार जब कोलकाता पहुँचा तो ब्रिगेडियर व्हीलर के नेतृत्व में नयी सेना आ गयी। अब रामसिंह चारों ओर से घिर गये। ब्रिटिश रानी विक्टोरिया का भतीजा जॉन पील पुरस्कार पाने के लिए स्वयं ही राम सिंह को पकड़ने आगे बढ़ा, पर चण्डी के एक ही वार से वहीं धराशाही हो गया। जॉन पील 17 जनवरी 1849 को मृत्यु को प्राप्त हुआ। इस संदर्भ में एक शिलालेख आज भी वहाँ मौजूद है।

जॉन पील की मृत्यु पर अंग्रेज़ और अधिक उग्र हो गये। परन्तु उन्हें विश्वास हो गया कि राम सिंह को सामने से पकड़ना सम्भव नहीं

है। अंग्रेज़ों ने स्थानीय पुजारी को अपने वश में किया जिस ने राम सिंह की बिना हथियार अकेले पूजा हेतु वहाँ आने की सूचना अंग्रेज़ों को दे दी। राम सिंह रावी नदी के तट पर पूजा कर रहा था तो अंग्रेज़ी सेना ने घेर लिया। उन्होंने मिलकर षड्यंत्र पूर्वक कार्यवाही करके घायल राम सिंह को पकड़ लिया। राम सिंह को गिरफ्तार करके कांगड़ा के किले में ले जाया गया। अंग्रेज़ों द्वारा उसे जागीरें एवं पर्याप्त धन का प्रलोभन भी दिया गया परन्तु वह टस से मस न हुआ। अंग्रेज़ी सरकार ने उन पर फौजी अदालत में मुकदमा चला कर आजीवन कारावास के लिये पहले सिंगापुर और फिर काला पानी रंगून भेज दिया। रंगून की जेल में ही अंग्रेज़ों की प्रताड़ना से मातृभूमि को याद करते हुए उन्होंने वहां 11 नवम्बर 1856 के दिन अपने प्राण त्याग दिये। उस समय वह केवल 26 वर्ष के ही थे।

डल्ले की धार पर लगा शिलालेख आज भी उस वीर की याद दिलाता है। नूरपूर के जनमानस में इनकी वीर गाथा 'रामसिंह पठानिया की वार' के नाम से गायी जाती है। हर वर्ष 17 अगस्त को शाहपुर कण्डी के निकट धोलाधार पर इस बहादुर योद्धा की याद में एक मेला लगता है। यहाँ इस निर्भीक वीर की तलवार व असला दर्शाए जाते हैं। राम सिंह की वीरता के लोकगीत आज भी इस इलाके में गाए जाते हैं:–

किला पठानिया खूब लददया
बल्ले पठानिया खूब लददया
डल्ले दी धारा डफली जो बजदी
कुमनी बजाए तमूर.........

....
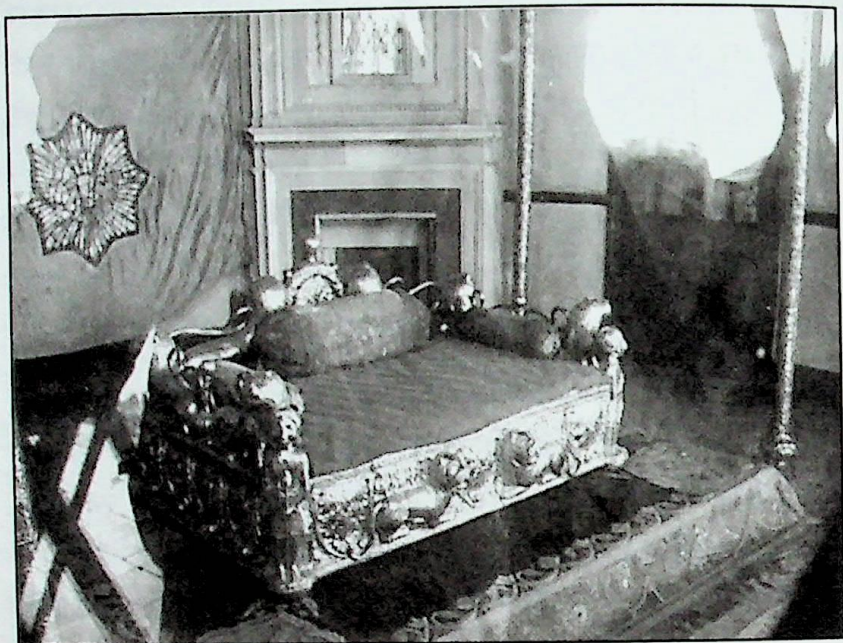
शाही तख्त
(Princely throne)

महाराजा रणवीर सिंह

महाराजा गुलाब सिंह के महाराजा का पद छोड़ने के उपरान्त 1856 से 1885 तक जम्मू–कश्मीर राज्य में महाराजा रणवीर सिंह का शासन काल रहा। महाराजा रणवीर सिंह के राज्य काल में कई प्रमुख प्रशासनिक सुधार हुए और प्रशासन को राजस्व, नागरिक एवं सैन्य विभागों में बांटा गया। न्याय व्यवस्था को भी पुनर्गठित किया गया। जम्मू और श्रीनगर में पुनर्विचार अदालतें स्थापित करने के अतिरिक्त राज्य में तीस अधीनस्थ अदालतें कायम की गईं। ब्रिटिश इंडिया की तरह माकले कोड की तर्ज पर रणवीर पीनल कोड तैयार किया गया जो आज भी राज्य में प्रचलित है। जम्मू से श्रीनगर और श्रीनगर से रावलपिंडी के बीच सड़कों का जाल बिछवाया गया। इसके अतिरिक्त डाक व तार सेवा को भी संस्थागत बनाया गया। रेशम की गुणवत्ता को सुधारने के लिये चीन से रेश्मी कीड़ों के बीज मंगवाये गये और शालों पर से निर्यात शुल्क समाप्त किया गया।

महाराजा रणवीर सिंह ने अपने शासनकाल में शिक्षा पर व्यक्तिगत रूचि दिखाते हुए जम्मू, श्रीनगर व अन्य कस्बों में मकतब और पाठशालाएँ खोलीं ताकि हिन्दुओं व मुसलमानों को शिक्षा के समान अवसर प्राप्त हों। उच्च शिक्षा को बढ़ावा देने के लिये पंजाब विश्वविद्यालय लाहौर की स्थापना के लिये एक लाख रूपये दान दिया। इसी प्रकार बनारस के संस्कृत संस्थान को भी कुछ राशि उपलब्ध करवाई गई और राज्य के विद्यार्थियों के अध्ययन के लिए प्रावधान किए। जम्मू के रघुनाथ मंदिर का निर्माण कार्य जो महाराजा गुलाब सिंह ने सन् 1835 में प्रारम्भ किया था वह 25 वर्ष उपरान्त महाराजा रणवीर सिंह के शासन काल सन् 1860 में पूरा हुआ।
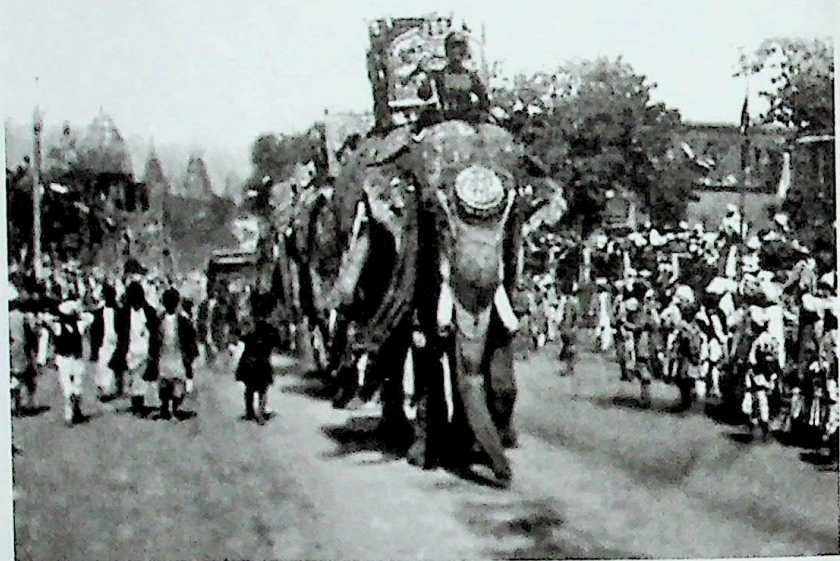
(जम्मू के प्राचीन रघुनाथ बाजार में महाराजा की सवारी का दृश्य)

महाराजा प्रताप सिंह

महाराजा प्रताप सिंह ने जम्मू–कश्मीर राज्य में 1885 से 1925 तक शासन किया। इस दौरान भी कई महत्वपूर्ण कार्य किये गये। 1890 में श्रीनगर और रावलपिंडी हेड को सड़क मार्ग से जोड़ा गया। 1913 में जम्मू के मशहूर बी.सी. रोड (बनिहाल कार्ट रोड) की बुनियाद रखी गई जो कि 1915 में पूरी हुई, जब एक घोड़ा गाड़ी वादी की तरफ रवाना हुई। पहले कुछ समय के लिये यह महाराजा का निजी मार्ग रहा, मगर 1922 में इसे आम लोगों के लिये खोल दिया गया। इस प्रकार कश्मीर वादी का जम्मू से सड़क सम्पर्क बन गया।

महाराजा प्रताप सिंह ने जम्मू और कश्मीर के बीच टेलीफोन संपर्क कायम किया। कई सड़कें बनीं और प्रमुख शहरों तक तार यानि टेलीग्राफ लाइनें बिछाई गईं। इस दौरान विदेशी पर्यटकों की आमद काफी हद तक बढ़ी। 1907 में मोहरा में एक पनविद्युत परियोजना शुरू हुई जो मैसूर राज्य के बाद देश में दूसरी बड़ी परियोजना थी। श्रीनगर शहर को बाढ़ की मार से बचाने हेतु सन् 1908 में एक नई बाढ़ नियंत्रण योजना शुरू हुई जो 1912 में पूरी हो गई। 1921 में बेगार प्रथा को पूरी तरह समाप्त कर दिया गया। रेशम व्यवसाय में पुनः सुधार लाया गया। फ्रांस और इटली से रेशम के कीड़ों के बीज आयात किये गये। राज्य की खनिज संपदा और बागवानी के दोहन के लिये लाइसेंस जारी हुए और विदेशी विशेषज्ञों की सहायता प्राप्त की गई। 19वीं शताब्दी के अंतिम दशक में विश्व प्रसिद्ध हाउस बोट का निर्माण हुआ। इसी दौरान जम्मू और श्रीनगर नगर में बिजली की सप्लाई प्रारम्भ हुई।

महाराजा प्रताप सिंह के राज्यकाल में शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण विकास हुआ। 1874 में राज्य में पहला सरकारी स्कूल बना जिसमें अंग्रेजी की शिक्षा आरम्भ की गई। 1881 में पहले मिशन स्कूल की स्थापना हुई। बाद में श्रीनगर में सन् 1905 में श्री प्रताप कॉलेज की शुरूआत हुई। इसी प्रकार जम्मू में भी सन् 1908 में प्रिंस ऑफ वेल्स कॉलेज का शुभारम्भ किया गया जो आज कल (G.G.M. Science College) जी.जी.एम. साईंस कॉलेज के नाम से प्रचलित है।

(ब्रिटिश–भारत की रियासतों के महाराजा)

शेर - ए - डुग्गर लाला हंसराज महाजन

हमीरपुर सिद्धड़ (तहसील अखनूर) ज़िला जम्मू की वह पावन धरती है जहाँ बुधवार, 8 सितम्बर 1866 को लाला हरिचंद महाजन (हरिया शाह) के प्रतिष्ठित परिवार में इस महान् आत्मा का जन्म हुआ। उस युग में स्कूल, कॉलेज नाम मात्र के थे, अतः इनको गांव की एक मस्जिद में इमाम से उर्दू और फारसी की शिक्षा प्राप्त करनी पड़ी।

'होनहार बिरवान के होत चिकने पात' की कहावत लाला हंस राज पर चरितार्थ होती है, जो बचपन से ही बड़े गुणी थे। एक बार महाराजा रणवीर सिंह की दृष्टि, हमीरपुर सिद्धड़ की यात्रा के दौरान, इस बालक पर पड़ी। बालक की असाधारण बुद्धि व गुणों से महाराजा बहुत प्रभावित हुए तो उन्होंने इस की शिक्षा का प्रबन्ध जम्मू में करने का आदेश जारी किया।

शिक्षा पूरी करने के बाद लाला हंस राज जी महाराजा के दूसरे राजकुमार राजा राम सिंह की सेवा में भर्ती हो गए। बाद में चीफ जज के रीडर मनोनीत हुए। शीघ्र ही अपने परिश्रम व लगन के फलस्वरूप रजिस्ट्रार के पद पर नियुक्त हुए। सरकारी नौकरी के दौरान भी लाला जी सार्वजनिक मामलों में सक्रिय रुचि लेते रहे जो प्रशासन के कई अधिकारियों को उचित नहीं लगा। अतः उन्होंने नौकरी त्याग कर वकालत करने का निर्णय लिया।

उर्दू–फारसी के अतिरिक्त लाला जी हिन्दी व संस्कृत में भी कुशल थे। आध्यात्मिक शिक्षा इन्होंने योगीराज स्वामी चम्पा नाथ जी से प्राप्त की इसलिए इनकी धार्मिक विषयों पर भी अच्छी पकड़ थी। वर्ष 1916 में महाराजा प्रताप सिंह की स्वीकृति से अपने आध्यात्मिक गुरु की स्मृति में लाला जी ने अम्बफला जम्मू में वेद मंदिर की स्थापना की, जहाँ आज भी

अनाथ बालक व बालिकाओं को शिक्षा प्रदान करने के अतिरिक्त वृद्ध आश्रम, गौशाला, सेवा भारती, विद्या भारती, विवेकानंद अस्पताल, निःशुल्क औषधालय, वेदशाला, जम्मू–कश्मीर अध्ययन केन्द्र, सहायता समिति व पूर्व सैनिक सेवा परिषद् जैसे कई अन्य सेवा कार्य भी चल रहे हैं।

लाला जी में देश–भक्ति की भावना कूट–कूट कर भरी थी। दीन दुःखियों की सहायता के लिए वह सदा तत्पर रहते थे। ग्रामीण लोगों, विशेष रूप से मज़दूर, किसान व शोषित वर्ग के लोगों की सहायतार्थ लाला जी सदा कमर कसे रहते और उनकी समस्याएँ संतोषजनक ढंग से सुलझाने में सदा आगे रहते। अपने लोगों को एक जुट रखने हेतु इन्होंने सर्वप्रथम वर्ष 1892 में महाजन सभा की नींव जम्मू में रखी, जिसका मुख्य उद्देश्य अनाथ व निर्धन युवाओं, लाचार वृद्धों, असहाए स्त्रियों इत्यादि की निःस्वार्थ सेवा करना था। लाला जी द्वारा लगाया गया यह पौधा आज एक विशाल वृक्ष का रूप धारण कर चुका है। कई नगरों में स्थानीय सभाओं के अतिरिक्त अखिल भारतीय महाजन शिरोमणि सभा के गणमान्य व्यक्ति समाज के लोगों का पथ–प्रदर्शन करते रहे हैं एवं कर रहे हैं। कई लोग इससे लाभान्वित भी हो रहे हैं।

विभिन्न बिरादरियों का गठन :-

लाला जी न केवल अपनी बिरादरी के संगठन में रूचि लेते थे बल्कि दूसरी जात–बिरादरियों के मेल–जोल में भी विश्वास रखते थे। महाजन सभा की स्थापना के बाद, लाला हंसराज जी ने वर्ष 1904 में 'डोगरा सदर सभा जम्मू' की नींव रखी जिसमें डुग्गर प्रदेश के प्रत्येक धर्म के लोग शामिल किये गये। इसके बाद उन्होंने महाराजा प्रताप सिंह के छोटे भाई और महाराजा हरि सिंह के पिता राजा अमर सिंह की अध्यक्षता में 'जम्मू राजपूत सभा' की स्थापना में सहायता की और शुरू–शुरू में इसके सम्माननीय सचिव के रूप में कार्य करते रहे। मुसलमानों के अनुरोध पर 'अंजुमने इस्लामिया जम्मू' की स्थापना में भी लाला जी ने अपना योगदान दिया। नाइयों और झीवरों की भी सभाएँ स्थापित करके इन लोगों को जन–सुधार की ओर लगाया।

साधारण लोगों के अलावा स्वयं डुग्गर शासकों के लिए उस युग में राज्य में सभा–सोसायटियों की स्थापना एक अनोखी बात थी। इसलिए शाही परिवार के प्रतिष्ठित सदस्य भी लाला जी की जन–गतिविधियों में अपनी रुचि प्रकट करते थे। डोगरा सभा जम्मू के आरंभिक सदस्यों के रजिस्टर से पता चलता है कि 1904 में इस सभा की नींव रखी गई। लालाजी स्वयं सदस्यों की भर्ती का कार्य करते थे। यह राष्ट्रीय विषयों में उनकी गहरी लगन का प्रमाण है। इस रजिस्टर पर न केवल महाराजा प्रताप सिंह और राजा अमर सिंह के हस्ताक्षर हुए हैं; बल्कि कुछ एक तत्कालीन प्रतिष्ठित नागरिकों के भी हस्ताक्षर विद्यमान हैं। डोगरा सदर सभा के पदाधिकारियों में हिंदू, मुसलमान, डोगरे, पंजाबी यानि कि राज्य में बसने वाले सभी सम्प्रदायों के लोग थे। जम्मू निवासियों को लाला हंस राज जी की सेवाओं के प्रति कृतज्ञ रहना चाहिए क्योंकि उनके विचार दलगत जात–बिरादरी से ऊपर उठकर सभी डोगरा कौम की बेहतरी के लिए थे। डोगरा कौम में जो राष्ट्रीय भावना ओत–प्रोत है, यह लाला जी की कोशिशों का फल है।

समाज सुधारक

महाराजा हरि सिंह के कार्यकाल में जो समाज–सुधार के कार्य सम्पन्न हुए, वह सब लाला जी के प्रयासों की बदौलत थे। लाला जी वशांनुगत अधिकार, नागरिक सुरक्षा, अव्यस्कों द्वारा सिगरेटनोशी पर पाबंदी, दोहरी के रिश्ते रिवाज की समाप्ति के पक्षधर तथा अन्य समय से पिछड़े कुछ कानूनी प्रावधानों के विरुद्ध थे। वह रिश्वतखोरी के सख्त खिलाफ थे तथा गरीब–दीन दुखियों की मदद करना अपना प्रथम कर्त्तव्य मानते थे। राज्य की प्रजा सभा (असैम्बली) की स्थापना में उन्होंने मुख्य भूमिका अदा की और स्वयं भी प्रजा सभा के सदस्य रहे।

लाला हंसराज उच्चकोटि के समाज सुधारक, स्वाभिमानी, निडर और अनथक कार्यकर्ता थे। डुग्गर जाति की निष्काम भाव सेवाओं के कारण ही लाला जी ने 'शेरे–डुग्गर' तथा 'बूढ़े जरनैल' की उपाधियाँ हासिल कीं। लाला जी निडर, स्पष्टवक्ता और जनता के हमदर्द नेता थे।

प्रीति भोज को बहुत पसन्द करते थे। विवाह–शादियों पर व्यर्थ व्यय को बुरा समझते थे। युवकों को देश–भक्ति के लिए तैयार करते थे। उनका विचार था कि वे युवक ही देश भक्ति और समाज सुधार कर सकते हैं जिनके चरित्र अच्छे हों। वह कई यतीमों और विधवाओं को वज़ीफा भी अपने पास से देते रहे। उन्होंने अपने घर वालों से अपने भाग की रकम लेकर (तीन दुकानों के निर्माण हेतु) दान के तौर पर वेद मंदिर को दे दी।

कंडी इलाकों का सुधार

किसी प्यासे को पानी पिलाना, छबीलें लगवाना और कुएँ बनवाना बड़े पुण्य का काम है, परन्तु इससे भी अधिक पुण्य का काम है उस क्षेत्र में पानी की व्यवस्था करना जो खुश्क हो और जहाँ सैंकड़ों–हज़ारों मवेशियों को पानी की बूंद भी न मिलती हो। कंडी इलाकों में पानी उपलब्ध करवाने की कामयाबी का सारा श्रेय लाला जी को जाता है। कंडी क्षेत्र यानि ऊसर भूमि की दशा बेहतर बनाने को लाला जी मानव कल्याण का एक बड़ा कार्य मानते थे। उन दिनों कण्डी में रहने वाले लोगों की दशा दयनीय थी। पेयजल लाने के लिये उनको मीलों की यात्रा करनी पड़ती थी। गरमी के दिनों में दशा और भी बद्तर हो जाती थी। पशु–पक्षियों की तो कुछ न पूछिये! यदि हम आज से 100–150 वर्ष पहले की स्थिति पर दृष्टि डालें, तभी हम लाला जी के युग प्रवर्तक विचारों को समझ सकते हैं।

जम्मू–कश्मीर के कंडी क्षेत्र में पानी उपलब्ध करवाने सम्बन्धी लाला जी की योजना और प्रस्तावों का उदाहरण अन्यत्र मिलना मुश्किल है। कंडी इलाके के लोगों की बदहाली से लाला जी किस प्रकार चिंतित थे वह उनकी इस बात से पता चलता है कि एक बार एक प्रैस विज्ञप्ति में उन्होंने राज्य के मंत्रियों को सम्बोधित करते हुए टिप्पणी की थी कि वे कश्मीर घाटी का दौरा तो करते हैं, परन्तु कंडी क्षेत्र की तरफ ध्यान नहीं दे पाते। उन्होंने उन्हें आमंत्रण किया कि वे इस क्षेत्र का दौरा करके देखें कि स्रोत केवल मात्र तालाब हैं, जिनमें पशु विचरते हैं, लोगों का नहाना–धोना होता है और इन्हीं तालाबों का पानी पीने को लोग मजबूर

हैं। गर्मियों में यह पानी भी उपलब्ध नहीं रहता। यदि कोई मंत्री एक हफ्ता इस इलाके में रहने को मजबूर किया जाए तो वह अपना पद छोड़कर वहाँ से रुख्सत लेना ही बेहतर समझेगा। कितनी सही तस्वीर लाला जी ने कंडी इलाकों की खींची थी? उस समय केवल हमारे राज्य में ही नहीं, पूरे देश के कंडी क्षेत्रों का लगभग यही हाल था। डोगरा सदर सभा के प्रधान की हैसियत से लाला हंस राज जी ने इस संदर्भ में एक प्रस्ताव तैयार किया, जिसे उन्होंने 14 अप्रैल 1939 को प्रधान मंत्री गोपाल स्वामी अय्यंगर के माध्यम से महाराजा हरि सिंह को प्रस्तुत किया था, उस पर लाला जी के प्रयासों से बहुत हद तक अमल हुआ व जनता को थोड़ी बहुत राहत मिली।

नारी - कल्याण में लाला जी की भूमिका

लाला हंस राज जी का मानना था कि किसी जाति और देश की दशा तब तक नहीं सुधर सकती जब तक उसकी महिलाओं और बच्चों की दशा ठीक न हो। महाजन सभाओं के वार्षिक समारोहों में और अन्य अनेक अवसरों पर 'महिला सम्मेलन' और 'युवक–कांफ्रेस' का आयोजन भी लाला जी के दिमाग की उपज है। लाला जी का दृढ़ विश्वास था कि नारी समाज के सुधार के बिना, कुरीतियों का उन्मूलन असंभव बातों में से एक है। लाला जी महिलाओं व बच्चों के जलसे भी करवाया करते थे। वह कहा करते थे कि हमारा देश तब तक प्रगति नहीं कर सकता जब तक महिलाओं और बच्चों में उच्च कोटि के विचारों का प्रचार न हो। वह महिलाओं को शिक्षा दिया करते थे कि वह महत्वपूर्ण अवसरों पर ऐसे भजन और गीत गाया करें जिससे हमारी नैतिकता प्रबल बन पाये और हमारी आने वाली पीढ़ियाँ प्रगति कर सकें। जम्मू में लाला जी ने 'स्त्री–जीवन सुधार सभा' नामक एक सोसॉयटी भी गठित की, जिसकी महासचिव जम्मू के एक उच्च घराने की सदस्या श्रीमती इनायत बेगम थी। सति–प्रथा के लाला जी विरोधी थे और विधवा–विवाह को उनका पूरा समर्थन था।

स्वदेशी के समर्थक

लाला हंसराज जी स्वदेशी लहर के बड़े समर्थक थे। शताब्दी के आरम्भ में, जब स्वदेशी की लहर बंगाल से आरम्भ हो कर सारे देश में फैल गई, तो इस संदर्भ में लाला जी ने जम्मू–कश्मीर राज्य में काफी सक्रियता दिखाई। ठोस उदाहरण स्थापित करते हुए, लाला जी ने खद्दर पहनने और खद्दर प्रचार की शपथ ली और इसके बाद कभी विदेशी कपड़े को हाथ न लगाया। न केवल यह, बल्कि पुरानी मंडी जम्मू में लाला जी ने लघु स्तर पर खद्दर तैयार करने और रंगसाजी के कारखाने भी स्थापित किये। डोगरा सभा की देख–रेख में भी खादी का एक कारखाना शुरू किया गया।

यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि महात्मा गांधी ने भारत में, इससे 15 वर्ष उपरान्त, विस्तृत स्तर पर, खद्दर प्रचार का कार्य हाथ में लिया। लाला जी पहले तो प्रायः खद्दर की बड़ी पगड़ी, जिसके नीचे पुराने ढंग के डोगरा बुजुर्गों जैसी एक छोटी रंगदार पगड़ी भी हुआ करती थी, पहना करते थे परन्तु महात्मा गांधी के अभियान के बाद ही लाला जी ने गांधी टोपी पहनना आरम्भ की। लाला जी स्वयं पूर्णतया खद्दरधारी तथा गांधी जी के कट्टर अनुयायी थे।

प्रकाशन में योगदान

लाला जी ने जम्मू से दो उर्दू पत्रिकाएँ भी विमोचित कीं। एक महाजन सभा जम्मू का 'महाजन नीति–पत्र' और दूसरा डोगरा सदर सभा की गृह पत्रिका 'डोगरा गजट'। इन पत्रिकाओं में अधिकतर सामूहिक–सुधार के लेख और समाचार प्रकाशित होते थे। इन्हें शिक्षित सज्जन बड़ी रूचिपूर्वक पढ़ा करते एवं अशिक्षित लोग उत्सुकता से सुना करते थे।

भ्रमण की रूचि

लाला हंस राज जी को भ्रमण करने और हालात का व्यक्तिगत जायज़ा लेने का बड़ा शौक था। इस कारण अपने अनुभवों में वृद्धि करने

हेतु वर्ष 1931 में भारत भर की यात्रा की। देश के चोटी के नेताओं से विचार–विनिमय किया। उनके मस्तिष्क में जन–कल्याण की जो योजना थी उसका ज़िक्र इस यात्रा के दौरान लाला जी ने अनेक भारतीय नेताओं से किया। महात्मा गाँधी ने तो लाला जी के इन विचारों को बड़ा सराहा।

एक महान् व्यक्तित्व

लाला जी बिल्कुल सादा आहार लेते थे। आहार में दूध, दही, फल ज्यादा पसंद करते थे। डोगरी भोजन उनको प्रिय था और वह सदैव प्रसन्नचित दिखाई देते थे। लाला जी वृद्धावस्था में भी युवकों जैसा दिल और दिमाग रखते थे। दूसरों को खुश करने और स्वयं प्रसन्न होने का कोई अवसर अपने हाथ से नहीं जाने देते थे। लाला जी जात–पात के कट्टर विरोधी थे। एक बार चश्मे के पानी को लेकर राजपूतों व हरिजनों का विवाद हो गया। इस पर राजपूतों को समझाते हुए लाला जी ने कहा कि हरिजन हमारे भाई हैं और यह दबे–कुचले रहेंगे तो समाज और देश प्रगति नहीं कर पायेगा। लाला जी अदम्य साहस के मालिक थे।

अपने ध्येय की प्राप्ति के लिए वह अंत तक जुटे रहे। लाला जी सामाजिक सुधार के पक्षधर तो थे, किन्तु जो कुछ वह कहते पहले उस पर स्वयं अमल करते थे। यही कारण था कि उनकी बातों का गहरा असर होता था।

देश–सेवा लाला जी के मन में कूट–कूट कर भरी हुई थी जिसका प्रमाण उनके निम्नलिखित विचारों से मिलता है–

"ईश्वर की, ईश्वर के भक्तों की, माता–पिता की और गुरुओं की, भाई–बहिनों की, मित्रों की, राष्ट्र की, यहाँ तक कि संसार के हर जीव की सेवा ही महाधर्म है। परन्तु यह बात भूलने की नहीं कि सभी प्रकार की ये सेवाएँ देश–सेवा की तुलना नहीं कर सकती हैं। क्योंकि देश सेवा से ही इन सबकी सेवा होती है।"

लाला जी ने उचित ही कहा है कि– "जो राष्ट्र स्वयं उठने का प्रयास नहीं करते, उन्हें ईश्वर भी नहीं उठा सकता।" वह कहा करते थे–

"अच्छे विचार, अच्छी जीवन पद्धति और आपस में प्रेम के साथ रहना ही देश–सेवा है।"

अंतिम यात्रा

अपनी आयु के अंतिम चरण में लाला हंसराज जी को बवासीर का रोग लग गया। वृद्धावस्था के कारण उनकी बिमारी बढ़ती गयी। उन्होंने इच्छा प्रकट की कि उनका अंतिम संस्कार उनके पैतृक गाँव हमीरपुर, सिधड़ में किया जावे। इसी कारण मृत्यु निकट दिखाई देने पर उन्हें पैतृक गाँव ले जाया गया, जहाँ 26–27 फरवरी 1944 की मध्य रात्रि को वह परलोक सिधार गये। ऐसे उच्च कोटि के व्यक्तित्व के धनी का निधन सुन कर हर तरफ शोक छा गया। उस समय के महाराजा हरि सिंह ने उनकी मृत्यु पर अपना व्यक्तिगत दुःख प्रकट किया। राज्य व देश के अन्य भागों से नेताओं ने अपने शोक संदेशों द्वारा लाला जी के महान कार्यों को सराहा। समाचार पत्रों ने भी इस दुःखद समाचार को सुर्खियों में स्थान दिया। सभा सोसाइटियों ने शोक प्रस्ताव पारित कर अपने दुःख को प्रकट किया।

लाला हंस राज जी की गिनती राज्य के उन चन्द नेताओं में होती है जिनका नाम राज्य से बाहर भी बड़े सम्मान से लिया जाता है। डोगरा देश की चप्पा–चप्पा धरती लाला जी की ऋणी रहेगी। उनकी याद में नगर निगम पार्क जम्मू व कृष्ण नगर दिल्ली में उनकी प्रतिमाएँ स्थापित कर स्मारक बनाए गये हैं।

लाला जी अनगिनत गुणों से भरपूर थे। देश के युवक उनकी व्यस्त, व्यवस्थित जीवनचर्या से प्रेरणा लेकर लाभान्वित हो सकते हैं। लाला हंस राज महाजन प्राकृतिक नियमों अनुसार इस देह का त्याग कर चुके हैं परन्तु उनके नेक नाम और कार्यों की स्मृति सदैव हमारे दिलों में ताज़ा रहेगी और हमारा मार्गदर्शन करती रहेगी।

मेहर चन्द महाजन

-एक श्रेष्ठ एंव निष्ठावान व्यक्तित्व

श्री मेहर चन्द महाजन का जन्म 23 दिसम्बर, 1889 को टिक्का, नगरोटा तहसील नूरपुर जिला कांगड़ा हिमाचल प्रदेश में हुआ। यह इलाका स्वतन्त्रता से पहले नूरपुर रियासत का हिस्सा थी। इस रजवाड़े को गर्व हासिल है कि इसकी धरती में राम सिंह पठानिया जैसे वीर योद्धा का जन्म हुआ जिसने अपनी 24 सेर वज़नी तलवार से अंग्रेज़ी सेना को छटी का दूध याद करा दिया था। श्री मेहर चन्द महाजन भी इस धरती के एक ऐसे लाल थे जो अपने जीवन काल में उच्चकोटि के कर्मयोगी, देश भक्त, न्यायविद् तथा शिक्षाविद् रहे। इन्होंने महत्वपूर्ण पदों पर आसीन रहकर अपने देश व समाज की महान् सेवा की, जिसे चिरकाल तक याद किया जाएगा।

श्री मेहर चन्द जी के पिता बाबू ब्रिज लाल एक नेता थे। मेहर चन्द जी का जन्म गण्डमूल नक्षत्र में होने के कारण पंडित ने बालक को परिवार के लिये अशुभ मान इसको पालन हेतु किसी दूसरे परिचित परिवार में भेजने की सलाह दी। ऐसा कहा जाता है कि गण्डमूल नक्षत्र में जन्मे बालक का मुख देखना पिता के लिए शुभ नहीं होता। किसको मालूम था कि जन्म से अशुभ समझा जाने वाला बालक एक दिन पूरे देश में अपना नाम रोशन करेगा? अतः इस बालक को जन्म के तुरन्त बाद एक राजपूत परिवार में पलने के लिए भेज दिया गया, जहाँ वह 12 वर्ष तक उनकी देख–रेख में बड़ा हुआ। जब यह बालक पंडित की बताई तिथि अनुसार 12 वर्ष की अवधि के बाद अपने घर आया तो घर वालों ने बड़ी खुशियाँ मनाईं।

बालक आरम्भ से ही कुशाग्रबुद्धि वाला एवं होनहार था। इसके पिता ब्रिजलाल जी ने इन्हें कानून की शिक्षा प्राप्त करने हेतु लाहौर भेजा। कानूनी शिक्षा पूरी कर श्री महाजन धर्मशाला (हि. प्र.) में 1913 में प्रेक्टिस करने लगे। फिर कुछ मित्रों की सलाह पर श्री मेहरचन्द जी गुरदासपुर जा कर वकालत करने लगे।

गुरदासपुर में इन्होंने वकालत का काम बड़ी तन्मयता व लगन से किया जिस कारण शीघ्र ही एक नामी वकील के नाम से प्रसिद्ध हो गये। अपने कुछ मित्रों की सलाह पर श्री महाजन लाहौर हाई कोर्ट में जा कर वकालत करने लगे।

इस दौरान सन् 1938–43 के बीच वह बार एसोसिएशन लाहौर हाई कोर्ट के प्रधान भी रहे। कुछ ही वर्षों के भीतर उन्होंने परिश्रम व कुशाग्रबुद्धि के फलस्वरूप खूब धन और यश अर्जित किया। पुन्छ के राजा ने महाराजा प्रताप सिंह के खिलाफ एक मुकदमा दायर किया। इस मुकदमे में श्री महाजन अच्छे पैसे कमा सकते थे परन्तु इन्होंने पुन्छ के राजा को नेक सलाह देकर दोनों पार्टियों के बीच सुलह करवा दी और इस प्रकार मुकदमा वापस ले लिया गया। इस कारण भी इन्होंने काफी ख्याति प्राप्त की। वर्ष 1942 तक श्री महाजन का नाम पूरे पजांब के जाने माने वकीलों में गिना जाने लगा। इसी दौरान श्री महाजन आर्यसमाज के सम्पर्क में आए और उनके कार्यक्रमों में बड़ी रूचि लेने लगे। वर्ष 1943 में श्री महाजन को लाहौर हाई कोर्ट का जज बनाया गया।

मई 1947 में महाराजा हरि सिंह ने अपनी महारानी तारा देवी, अपने पुत्र कर्ण सिंह और कैप्टन हरनाम सिंह को श्री मेहर चन्द महाजन से भेंट करने हेतु भेजा और इन्हें अपनी रियासत के प्रधानमंत्री के पद की पेशकश की। श्री मेहर चन्द जी की महारानी से लाहौर के एक होटल में भेंट हुई। जब श्री महाजन ने इस पद को ग्रहण करने में असमर्थता प्रकट की तो महारानी ने इन्हें महाराजा से भेंट करने का

आग्रह किया। युवराज कर्ण सिंह ने वार्तालाप के बीच बोलते हुए कहा, "क्या हमारी रियासत इतनी छोटी है कि इसके प्रधानमंत्री का पद आपकी गरिमा के अनुसार कम प्रतीत होता है?" यह सुन कर श्री महाजन ने महाराजा से भेंट करना स्वीकार कर लिया। ऐसा कहा जाता है कि महाराजा हरि सिंह को तत्कालीन गृह मंत्री श्री पटेल ने श्री महाजन के नाम का सुझाव दिया था।

इस घटनाक्रम के बाद श्री मेहर चन्द महाजन को रेडकल्फि आयोग का एक सदस्य बना दिया गया, जिस कारण श्री महाजन महाराजा हरि सिंह से नहीं मिल पाये। अधिकाँश पाठकों को शायद जानकारी नहीं होगी कि सारे गुरदासपुर को आरम्भ में विभाजन के कारण पाकिस्तान को देने का सुझाव था। यदि ऐसा हो जाता तो रियासत जम्मू कश्मीर का भारत के साथ कोई रेल अथवा सड़क का सम्पर्क न रहता। इस प्रकार पाकिस्तान का बड़ी सरलता से पूरे राज्य पर कब्जा हो जाता और यहाँ के लाखों हिन्दुओं और सिक्खों के लिए बड़ी तबाही का कारण होता। रेडकल्फि आयोग में सभी पार्टियों व धर्म की नुमायंदगी थी। श्री महाजन का गुरदासपुर के एक बड़े भाग को भारत में मिलाने का बहुत बड़ा योगदान रहा। मुस्लिम बहुल–क्षेत्र होने के कारण सभी पाक समर्थकों को गुरदासपुर ज़िला के पाकिस्तान में जाने की आशा थी क्योंकि धर्म के आधार पर ही देश का विभाजन हुआ था।

श्री मेहरचन्द महाजन ने अपनी कुशाग्र बुद्धि से आयोग के सामने इस भाग को भारत में मिलाने के बड़े ठोस तर्क पेश किये। उन्होंने कहा कि रावी नदी को दोनों देशों के बीच बंटवारे की कुदरती रेखा माना जाए। रावी नहर 40000 सिक्ख सैनिकों द्वारा बनाई गई थी। इस सेना को ब्रिटिश सिक्ख युद्ध के बाद भंग कर दिया गया था इसलिए यह नहर हिन्दुओं और सिक्खों की भावनाओं से जुड़ी थी। यह भी सत्य है कि आयोग के अधिकतर सदस्य इस मसले पर एक मत नहीं थे। अतः लार्ड माऊंटबेटन को दखल दे कर अंतिम निर्णय लेना पड़ा। ऐसा

लगता है कि लार्ड माउंटबेटन श्री महाजन की दलीलों से काफी प्रभावित हुए और उन्होंने गुरदासपुर के एक भाग शकरगढ़ को छोड़ पूरे ज़िले को भारत में मिलाने का फैसला लिया। परन्तु कई सियासी कारणों से इस निर्णय को कुछ समय के लिये गुप्त रखा गया।

रेडकल्फि एवार्ड के उपरान्त श्री महाजन जब पूर्वी पजांब के हाई कोर्ट के चीफ जज के पद पर कार्यरत थे, तभी महाराजा हरि सिंह ने उन्हें पुनः रियासत के प्रधान मंत्री का पद भार संभालने का निमंत्रण दिया। सरदार पटेल ने श्री महाजन से अनुरोध किया कि वह रियासत के प्रधान मंत्री के पद को तुरंत स्वीकार कर लें तथा महाराजा को जम्मू–कश्मीर राज्य का भारत में विलय के लिये तैयार करें। इस हेतु सरदार पटेल ने श्री महाजन को न्यायाधीश के पद से छुट्टी भी दिलवा दी। जब श्री मेहरचन्द ने राज्य के प्रधानमंत्री का पदभार ग्रहण किया उस समय राज्य बड़ी विकट परिस्थिति से गुजर रहा था।

इन्हीं दिनों रा.सव.संध के सरसंघचालक गुरु गोलवलकर जी महाराजा से भेंट करने श्रीनगर पहुँचे और महाराजा को भारत में विलय हेतु मनाने का प्रयास किया और महाराजा से इस सम्बन्ध में शीघ्र निर्णय लेने के लिए निवेदन किया। महाराजा और गुरु जी की जो बैठक हुई, उसमें श्री महाजन भी उपस्थित थे। श्री महाजन ने भी गुरू जी की बात का समर्थन कर महाराजा को शीघ्र निर्णय लेने का परामर्श दिया। अन्ततः 26 अक्तूबर को महाराजा द्वारा विलय पत्र पर हस्ताक्षर करने के उपरान्त 27 अक्तूबर को भारतीय सेना श्रीनगर हवाई अडडे पर उतरी और इस प्रकार राज्य एक भयंकर त्रासदी से बच गया। श्रीनगर शहर पाकिस्तान के कब्ज़े में जाते–जाते रह गया क्योंकि उस समय पाक सेना व कबाइलियों की संयुक्त सेना मुज़फ्फ़राबाद और बारामूला को तहस–नहस कर श्रीनगर के दरवाजे तक आ पहुँची थी। श्री मेहरचन्द महाजन का योगदान इस दिशा में अत्यन्त महत्वपूर्ण था जो इतिहास में सदा याद रखा जायेगा।

वर्ष 1948 से 1953 के बीच श्री मेहरचन्द जी को देश के उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीश नियुक्त किया गया और जनवरी 1954 को वह देश के तीसरे प्रधान न्यायाधीश बने। श्री महाजन ने एक सफल वकील, प्रशंसनीय न्यायाधीश और जाने–माने राजनीतिज्ञ के रूप में अपना नाम रोशन किया। न्यायाधीश के नाते उन्होंने कई महत्वपूर्ण निर्णय सुनाये। सेवा निवृत्त होने तक (65 वर्ष की आयु सीमा) उन्हें भारतीय जुडिशयल सिस्टम (India Judicial System) का प्रधान बनाया गया।

श्री मेहर चन्द महाजन को महर्षि दयानंद के जन्म स्थल टंकारा आर्यसमाज का प्रधान बनाया गया। इन्होंने आर्यसमाज के प्रचार–प्रसार हेतु लाखों रूपयों की धन राशि जमा करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। श्री महाजन को पंजाब नेशनल बैंक का डायरेक्टर बनाया गया जिस पद को उन्होंने 35 वर्ष तक सुशोभित किया। श्री मेहर चन्द जी अपने आप को महाजन कहलवाने में बड़ा गर्व महसूस करते थे; वास्तव में अपना उपनाम महाजन लिखने वाले संभवतः वह प्रथम व्यक्ति थे।

वर्ष 1929 को श्री मेहर चन्द जी को अखिल भारतीय महाजन शिरोमणी सभा का प्रधान बनाया गया। जम्मू में भी श्री महाजन के नाम पर एक अस्पताल का भी निर्माण किया गया जहाँ मरीज़ों का निःशुल्क इलाज होता है।

श्री मेहरचन्द महाजन एक उच्चकोटि के कर्मयोगी देशभक्त न्यायविद् तथा शिक्षाविद् थे। इन महत्वपूर्ण पदों पर आसीन रहकर श्री महाजन ने देश व समाज की महान् सेवा की। आर्य समाज के लिए उनके द्वारा की गई सेवाओं को सदा याद रखा जायेगा।

(महाराजा हरि सिंह अपने दरबारियों के साथ)

महाराजा हरि सिंह

जम्मू–कश्मीर राज्य में 1925 से 1947 तक महाराजा हरि सिंह का शासनकाल रहा। अपने शासनकाल में महाराजा ने कई क्रान्तिकारी कदम उठाये जिनकी मिसाल देश के अन्य रजवाड़ों में बहुत कम मिलती है। ब्रिटिश इंडिया में केवल महाराजा हरि सिंह ही थे जिन्होंने 1931 की गोल मेज़ कांफ्रेंस में अपना राज्य (Self Rule for India) की आवाज़ उठाई। शायद महाराजा की इसी स्पष्टवादिता व साहसिक उद्‌बोधन के फलस्वरूप वह ब्रिटिश शासन की आँखों का काँटे बन गये तथा महाराजा के खिलाफ शेख अब्दुल्ला की गतिविधियों को ब्रिटिश शासन द्वारा पूरा प्रोत्साहन मिलने लगा। महाराजा ने फिर भी कोई परवाह न करते हुए 1942 की गोलमेज़ कांफ्रेंस में घोषणा कर दी कि वह भारतीय गणराज्य में शामिल होने वाले सर्वप्रथम राजा होंगे। वह जिन्ना के दो राज्य सिद्धांत के विरूद्ध थे। अंग्रेजों द्वारा मतभेद होने पर भी उन्हें 1943 में वार कौंसिल का सदस्य बनाया गया।

1925 में महाराजा हरि सिंह ने अपने शासन की बाग डोर संभालते ही समाज से छुआछूत दूर करने हेतु निम्नवर्ग की बच्चियों का नवदुर्गा के रूप में पूजन आरम्भ करवाया। महाराजा स्वयं कट्‌टर सनातनी थे परन्तु वह सभी धर्मों का सम्मान करते थे। वह महाराजा हरि सिंह ही थे जिनके शासनकाल (सन् 1931) में निम्नवर्ग के बन्धुओं को मंदिरों में पूजा करने के अधिकार की शुरुआत हुई। ब्रिटिश भारत में शायद ही ऐसा साहसिक कदम किसी अन्य राजा ने उठाया होगा। वह कहा करते थे कि एक शासक के नाते मेरा कोई धर्म नहीं, केवल मात्र न्याय ही मेरा धर्म है। मेरे लिए सभी वर्ग, जातियाँ एवम् पूजा पद्धतियाँ एक जैसी हैं। बाल– विवाह, वैश्यावृत्ति तथा बच्चों द्वारा तम्बाकू के सेवन पर रोक एवं

अन्य कई ऐसे साहसिक कदम थे जिन से महाराजा हरि सिंह के स्वतन्त्र दृष्टिकोण का पता चलता है। जम्मू में एस.एम.जी.एस. (SMGS) व श्रीनगर में एस.एम.एच.एस. (SMHS) जैसे बड़े अस्पतालों का निर्माण महाराजा के जनता के प्रति हितचिंतक होने का सूचक है। महाराजा ने स्वयं हल चला कर यह सिद्ध कर दिया कि रण में शस्त्र चलाने वाले हाथ हल जोत कर पृथ्वी से अन्न भी उत्पन्न कर सकते हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में भी महाराजा हरि सिंह ने कई क्रान्तिकारी कदम उठाए। उन्होंने पूरे राज्य में शिक्षा को आवश्यक घोषित करके पाँचवीं कक्षा तक मुफ्त शिक्षा प्रदान की। उनके समय में पूरे राज्य में स्कूलों की संख्या 706 से बढ़कर 20728 हो गई। चूंकि उस समय मुस्लिम धार्मिक नेता आधुनिक शिक्षा के खिलाफ थे; फलस्वरूप इस वर्ग के अधिकतर लोग अपने बच्चों को स्कूल में नहीं भेजते थे। अतः महाराजा द्वारा मुल्लाओं को विशेष रूप से शिक्षा दी गई और उन्हें सरकारी स्कूलों में नौकरियाँ भी दी गयीं। शिक्षार्थियों के लिए वज़ीफे की भी घोषणा की गई।

महाराजा हरि सिंह के शासनकाल में ही संवैधानिक सुधार आयोग की नियुक्ति हुई जिसने विधान सभा चुनने की सिफारिश की। 1934 में प्रजा सभा के चुनाव में मुस्लिम कांफ्रेंस ने 21 में से 19 सीटों पर जीत हासिल की। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि महाराजा स्वयं ही प्रजातंत्र के हामी थे। इसके अतिरिक्त महाराजा ने अपने राज्य काल में जनता के हित के लिए कई महत्वपूर्ण घोषणाएँ कीं, जिनमें भर्तीबोर्ड की स्थापना मुख्य है।

महाराजा हरि सिंह के शासनकाल का यदि सूक्ष्म दृष्टि से आकलन किया जाए तो इसे स्वर्णकाल की संज्ञा निश्चित रूप से दी जा सकती है। महाराजा ने अपनी प्रजा पर धर्म, जाति व क्षेत्र के आधार पर कभी भेद–भाव नहीं किया। जम्मू और कश्मीर सम्भागों में एक समान ही महाराजा की नीतियों का लाभ हुआ। भारत में विलय सम्बन्धी निर्णय लेने

में महाराजा द्वारा विलम्ब करने से राज्य के हालात महाराजा के काबू से बाहर हो गये। जिस कारण पाकिस्तान राज्य के एक भाग पर कब्जा करने में सफल हो गया।

कुछ आलोचकों का विचार है कि अंग्रेजों द्वारा तय की गई निश्चित तिथि तक यदि महाराजा विलय सम्बन्धी निर्णय ले लेते तो शायद राज्य के हालात इतने खराब न होते और पाकिस्तान को राज्य के इतने बड़े भाग पर कब्जा करने का मौका न मिलता। ऐसा माना जाता है कि महाराजा के विलय सम्बन्धी निर्णय में देरी के कई कारण थे जिनमें भारत के साथ जम्मू कश्मीर राज्य का सड़क व रेल मार्ग सम्पर्क का न होना महत्वपूर्ण था। महाराजा पाकिस्तान के साथ विलय कभी नहीं चाहते थे। परन्तु भारत के साथ विलय को लेकर उनकी असमंजसता विशेषकर उनके प्रति नेहरू के व्यवहार को लेकर थी। तत्कालीन गृह मंत्री सरदार पटेल एवं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के तत्कालीन सरसंघचालक गुरु गोलवलकर जी ने भी महाराजा को भारत में विलय के लिये तैयार करने में अहम् भूमिका निभाई। अन्ततः 26 अक्तूबर 1947 को महाराजा द्वारा विलय–पत्र पर हस्ताक्षर करने के उपरान्त ही 27 अक्तूबर को भारत की सेना राज्य में दाखिल हुई। इस प्रकार जम्मू–कश्मीर राज्य का वर्तमान स्वरूप भारत का अंग बन गया।

दुर्भाग्यवश इस महान सपूत का अंत कोई सुखद नहीं रहा। महाराजा ने भारत सरकार के कहने पर देश हित की खातिर अपने राज्य का त्याग कर दिया और मृत्युपर्यन्त मुम्बई में ही रहे। हिन्दुओं की बात ही क्या कई मुसलमान बुजुर्गों को भी यह कहते सुना गया कि महाराजा का राज्य आज के शासकों से कई गुणा बेहतर था।
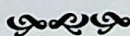
Jammu ki Mubarak mandi 1930

1947 के पराक्रमी वीर

ब्रि. राजेन्द्र सिंह

Crowley an English poet and
philosopher has said:
"People who have made history
are the martyrs"
(जो लोग इतिहास बनाते हैं वह सदा के लिए
अमरत्व को प्राप्त होते हैं)।

ऐसे ही इतिहास बनाने वाले पराक्रमी योद्धा का नाम था – ब्रिगेडियर राजेन्द्र सिंह। सन् 1947 में कश्मीर को पाक सेना व कबाइलियों के संयुक्त हमले से बचाने का श्रेय मुख्यता इसी वीर सैनानी को जाता है। इस धरती के सपूत ने अपने शौर्य व बहादुरी के कारण महाराजा की सेना के उच्च पद पर पहुँचने में सफलता प्राप्त की। 25 सितम्बर 1947 को इन्होंने अंग्रेज मेजर जनरल एच.एल. स्काट से सेना का उच्चतम पद उस समय संभाला जब राज्य पर युद्ध के बादल मंडरा रहे थे।

3 सितम्बर 1947 से ही पाक सेना ने 'आपरेशन गुलमर्ग' के नाम पर अपनी सेना व कबाइलियों के संयुक्त अभियान से जम्मू–कश्मीर पर कब्जा करने की साजिश रच ली थी। पाकिस्तान को विश्वास हो गया था कि महाराजा व राज्य के अन्य नेता पाकिस्तान में शामिल होने के विरुद्ध हैं: अतः वह किसी भी तरह इस हिस्से पर जबरदस्ती अपना कब्जा करना चाहता था। पाकिस्तान हकूमत ने बड़ी होशियारी से इस साजिश को अन्जाम दिया। इसमें वहाँ के सभी सियासी नेताओं की मिलीभगत थी वरन् इतना बड़ा फैसला सेना अपने बल पर कैसे ले सकती थी? अब तो यह एक एतिहासिक तथ्य है कि पाकिस्तान के सरपरस्त श्री मुहम्मद अली जिन्ना व प्रधानमंत्री लयाकत अली खान और पाक की मुस्लिम लीग इस अभियान के भागीदार थे। उन्होंने बड़ी

चालाकी से दुनिया को यह दिखाने की कोशिश की कि यह जंग कश्मीर के लोगों की छेड़ी हुई है जबकि उस समय की हकूमत में रहे मंत्री शौकत हयात खान ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि कश्मीर पर हमला श्री जिन्ना की स्वीकृति से हुआ था।

अभी ब्रिगेडियर राजेन्द्र सिंह को अपना पद–भार सम्भाले कुछ ही समय हुआ था कि उन्हें 22 अक्तूबर को सूचना मिली कि हमलावर मुज़फ्फ़राबाद पर कब्जे के बाद तेज़ी से श्रीनगर की ओर बढ़ रहे हैं। शत्रु ने मुज़फ्फ़राबाद पर कब्जा कर पूरे नगर को आग की भेंट कर दिया और कत्लेआम शुरु कर दिया है। उड़ी को रोंदते हुए शत्रु ने मोहरा बिजली घर को नुक्सान पहुंचा कर सारे श्रीनगर शहर में बिजली की सप्लाई ठप कर दी। श्रीनगर में उस समय कोई रिज़र्व सेना नहीं थी। महाराजा के आदेशानुसार ब्रिगेडियर राजेन्द्र सिंह ने 150 के लगभग सैनिक जिनमें रसोइए आदि भी थे, एकत्रित किये और सेना के सात ट्रकों पर सवार हो कर तेज़ी से दुमेल की ओर चल पड़े। परन्तु रास्ते में उन्हें पता चला कि दुमेल का पतन हो गया है और शत्रु मुज़फ्फ़राबाद, कोहाला व दुमेल का सर्वनाश करता, हिन्दुओं का कत्लेआम करता, गाँवों को लूटता, जलाता, महिलाओं का अपहरण करता सामरिक महत्व के केन्द्र गढ़ी डीटा तक आ गया है तथा वहाँ भी लूट पाट व हत्या कांड शुरु कर दिया है। हमलावर भी सेना के ट्रकों का उपयोग आगे बढ़ने हेतु कर रहे थे।

यहाँ यह बताना आवश्यक होगा कि महाराजा को पाक हमले के बारे में कुछ समाचार मिल रहे थे परन्तु या तो उन्होंने इन्हें संजीदगी से नहीं लिया या फिर विश्वास नहीं किया। महाराजा हरि सिंह को तो पहले उनके इर्द–गिर्द रहे लोगों ने सही सलाह नहीं दी। रियासत के बाद में बने प्रधानमंत्री जस्टिस मेहर चन्द महाजन ने इन तथ्यों का वर्णन किया है। उस समय श्री केदारनाथ साहनी पुन्छ से लेकर मीरपुर इलाके में रा.स्व.संघ की ओर से कार्य कर रहे थे। रियासत में अक्तूबर में

हालात खराब हो चुके थे। श्री साहनी को हरीश बनोट से 22 से 27 अक्तूबर के बीच रियासत पर कबाइली हमले की जानकारी मिली। बनोट, नवाब गोई के नाम से कबाइली और पाकिस्तानी इलाकों में रह रहे थे। 11 अक्तूबर को पुन्छ में बैठक के बाद 12 अक्तूबर को श्री साहनी ने श्रीनगर पहुँच कर इस की जानकारी प्रधानमंत्री जस्टिस मेहर चंद को दी।

मेहरचन्द ने यह सूचना महाराजा तक पहुँचाई। उन्होंने विश्वास नहीं किया। महाराज ने अपने ए.डी.सी. कैप्टन दिवान सिंह को मोटर साइकिल पर कर्नल नारायण सिंह के पास उड़ी क्षेत्र में स्थिति का जायज़ा लेने भेजा और उन्हें अपने मुस्लिम सैनिकों से सचेत रहने को कहा। जब कर्नल नारायण सिंह को पाक के आंशकित हमले के बारे में बताया गया और यह भी सचेत किया गया कि उनके मुस्लिम सैनिकों द्वारा पाक को समर्थन देने की सम्भावना है तो उन्होंने इस बात को सिरे से ही नकार कर कहा कि "उनके वफादार सैनिक उनके साथ ऐसा नहीं कर सकते। वह उन्हें अच्छी तरह जानते हैं, ये सैनिक द्वितीय महायुद्ध में उनके साथ थे, वे विश्वासघात नहीं कर सकते।" और वास्तव में वही हुआ, जिसकी आशंका पहले से ही थी। 22 अक्तूबर को कबाइली हमले के शुरू में ही कर्नल नारायण का हिन्दू सैनिकों–समेत अपने मुस्लिम सैनिकों द्वारा कत्ल कर दिया गया और वे पाक सेना से मिल गये और इस प्रकार मुज़फ्फ़राबाद पर पाक सेना ने बड़ी आसानी से कब्जा कर लिया।

महाराजा हरि सिंह ने सारी परिस्थिति को भाँपते हुए ब्रि. राजेन्द्र सिंह को संदेश भेजा कि किसी भी कीमत पर शत्रु को श्रीनगर नहीं पहुँचने देना है। ब्रिगेडियर राजेन्द्र सिंह ने महाराजा को विश्वास दिलाया कि, "आपके आशीर्वाद से मैं और मेरे साथी अपने खून की अंतिम बूँद तक राज्य की रक्षा करेंगे।" उस समय निरंतर वर्षा हो रही थी, तथा भीषण बर्फीली हवाएँ चल रही थीं। परन्तु ये बहादुर सैनिक

निरंतर आगे बढ़ रहे थे। 22 अक्तूबर को यह टुकड़ी रात होते–होते बारामूला पहुँच गयी। वहाँ उन्होंने विश्राम नहीं किया। रात के अंधेरे में ही कुछ जवानों को बारामूला की सुरक्षा हेतु छोड़ कर आगे बढ़ गये। अब हमलावरों ने नई नीति अपनाई। उन्होंने अपने लोगों को पहाड़ियों के रास्ते डोगरा सैनिकों के पीछे सड़क पर भेजना शुरु किया जिससे उन्हें बीच में घेरा जा सके। परन्तु ब्रिगेडियर के सैनिकों ने पूरे दो दिन तक हमलावरों को आगे न बढ़ने दिया। जब उन्हें दिखा कि अब तो शत्रु ने चारों ओर से घेराबन्दी कर ली है तब उन्होंने लड़ते–लड़ते अपने जवानों को बारामूला की ओर पीछे हटने का आदेश दिया। उड़ी की तरफ बढ़ने का प्रयास भी विफल हुआ यद्यपि इस सारे घटनाक्रम में दो दिन का समय और मिल गया।

बारामूला में जहाँ एक ओर ज़िला के वज़ीर वज़ारत (डिप्टी कमीश्नर) ने पाक सेना का बड़ा गर्मजोशी से स्वागत किया, वहीं दूसरी ओर मकबूल शेरवानी जैसे देश भक्त भी थे जिन्होंने आखिरी सांस तक शत्रु का विरोध करते हुए अपना बलिदान दे दिया। पाक सेना ने कबाइलियों को धन और औरत का लालच देकर अपने साथ इस अभियान में जोड़ा और उन्होंने इस में कोई कसर न छोड़ी। मुज़फ्फ़राबाद व बारामूला नगरों में वह अधिकतर लूटपाट और बलात्कार की घटनाओं में ही संलग्न रहे। अत्याचार की सभी हदें पार कर दीं। बारामूला ईसाई अस्पताल में कार्यरत यूरोपीयन नर्सों को भी नहीं बख्शा।

ब्रिगेडियर राजेन्द्र सिंह व उनके सैनिकों द्वारा शत्रु को इस फ्रन्ट पर इतने दिन रोकने का महाराजा को बड़ा लाभ हुआ। भारत सरकार से विलय सम्बन्धी वार्तालाप में इन्हीं दिनों प्रगति हुई। अन्ततः विलय पत्र पर महाराजा ने 26 अक्तूबर को हस्ताक्षर कर दिये और भारत सरकार के सैनिक 27 तारीख से श्रीनगर पहुँचना शुरू हो गये।

इधर अब ब्रिगेडियर के सामने बारामूला को शत्रु से किसी भी प्रकार से बचाने का प्रश्न था। ब्रिगेडियर के बहादुर सैनिकों ने यहाँ भी

शत्रु को काफी समय तक रोके रखा। परन्तु महाराजा के सैनिक बड़ी विषम परिस्थिति में शत्रु से लोहा ले रहे थे। सैनिक चार–पाँच दिनों से जूझ रहे थे। एक तो शत्रु के मुकाबले में उनकी संख्या बहुत कम थी फिर ऊपर से एमुनीशन भी लगभग समाप्त हो रहा था। सैनिक भूखे–प्यासे व थक चुके थे। आधे डोगरा सैनिक शहीद हो चुके थे और जो घायल थे उन की मरहम पट्टी भी नहीं हो पा रही थी। इन सब विकट परिस्थितियों में भी वह शत्रु को रोके हुए थे। ब्रिगेडियर अपने प्राणों की चिंता न कर हर मोर्चे पर जा कर स्वयं देखभाल कर रहे थे व अपने सैनिकों को उत्साहित कर रहे थे। लड़ते–लड़ते सैनिकों को पीछे हटा रहे थे। तभी शत्रु की एक गोली उनके दाएँ कंधे पर लगी और दूसरी उसी ओर की टाँग में जा घुसी। परन्तु ब्रिगेडियर की बंदूक ने आग उगलना बंद न किया। रक्त निरंतर बह रहा था। हालत बिगड़ती जा रही थी। सैनिक उन्हें उठाकर सुरिक्षत स्थान पर ले जाना चाहते थे, परन्तु सेनापति का आदेश था कि "मेरी चिंता न करो, मुझे यहीं रहने दो, शत्रु को आगे बढ़ने से रोको।"

अब ब्रिगेडियर अपनी पिस्तौल थामकर पास की झाड़ी की आड़ में खिसक गये। शत्रु के पास आते ही उन्होंने अपनी पिस्तौल की सारी गोलियाँ खाली कर दीं। 6–7 हमलावरों को भून दिया गया और तब शत्रु की गोलियों से छलनी हुआ उनका शरीर निष्प्राण होकर गिर पड़ा। सचमुच उनके संकल्प के अनुसार ही शत्रु उनकी लाश पर ही आगे बढ़ सके। उनके सैनिकों ने भी इसी संकल्प को पूरा करते हुए अपने सेनापति का अनुगमन किया। शत्रु तभी आगे बढ़ सके जब एक–एक डोगरा सैनिक शहीद हो गए। इस प्रकार 27 अक्तूबर को बारामूला के निकट बुनियार में इस महान् योद्धा ने अंतिम साँस तक शत्रु का मुकाबला कर अमरत्व प्राप्त किया। लेकिन इन सैनिकों की शहादत व्यर्थ नहीं गई। शत्रु को पाँच दिन इस फ्रन्ट पर रोकने से पाक की 26 अक्तूबर को श्रीनगर के राजमहल पर झण्डा फहराने की योजना विफल हो गई। भारत सरकार की सेना 27 अक्तूबर को श्रीनगर हवाई अड्डे

पर उतर चुकी थी, जिन्होंने पाक सैनिकों व कबाइलियों को पीछे खदेड़ना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार ब्रिगेडियर राजेन्द्र सिंह और उनके मुट्‌ठी भर सैनिकों ने अपना बलिदान दे कर कश्मीर को शत्रु के हाथों जाते–जाते बचा लिया।

भारत सरकार की ओर से इस वीर सैनानी को प्रथम मरणोपरान्त वीरता पुरस्कार 'महावीर चक्र' दिया गया जो फील्ड मार्शल के.एम. करियाप्पा ने 30 नवम्बर 1949 को श्रीनगर में इस अमर शहीद की विधवा को प्रदान किया।

> "संघ के स्वयंसेवकों ने हमें समय–समय पर अत्यन्त महत्वपूर्ण सूचनाएँ दी थीं। प्रथम तो हम उन पर विश्वास नहीं करते थे परन्तु मात्र संघ के खेमे से प्राप्त समाचार ही पूर्णता विश्वसनीय सिद्ध होते थे। पाकिस्तान सेना की गतिविधियों के बारे में समाचार प्राप्त करते समय संघ के स्वयंसेवकों ने जो साहस दिखाया, उसकी जितनी प्रशंसा की जाए, वह थोड़ी ही है।"
>
> –महाराजा हरि सिंह

मेजर सोमनाथ शर्मा

31 जनवरी 1922 को ग्राम डाढ ज़िला धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश में मेजर जनरल अमरनाथ शर्मा के घर एक होनहार बालक सोमनाथ का जन्म हुआ। इनके गांव से कुछ ही दूरी पर प्रसिद्ध तीर्थस्थल चामुण्डा नन्दिकेश्वर धाम है। सैनिक परिवार में जन्म लेने के कारण सोमनाथ शर्मा वीरता और बलिदान की कहानियाँ सुन कर बड़े हुए थे। देश प्रेम की भावना उनके खून की बूंद–बूंद में समायी थी।

प्रारम्भिक शिक्षा नैनीताल में प्राप्त कर सोमनाथ शर्मा ने प्रिन्स ऑफ वेल्स रायल इण्डियन मिलिटरी कालिज, देहरादून से सैन्य प्रशिक्षण लिया। 22 फरवरी 1942 को इन्हें कुमाऊं रेजिमेंट की चौथी बटालियन में सैकण्ड लेफ्टिनेंट के पद पर नियुक्ति मिली। इसी साल इन्हें डिप्टी असिस्टेंट क्वार्टर मास्टर जनरल बना कर बर्मा के मोर्चे पर भेजा गया। जहाँ इन्होंने बड़े साहस और कुशलता से अपनी टुकड़ी का नेतृत्व किया।

आज कश्मीर का जो हिस्सा भारत के पास है उसका श्रेय जिन वीरों को है, उनमें से मेजर सोमनाथ शर्मा की नाम अग्रणीय है। भारत–पाक बंटवारे के उपरान्त महाराजा विलय सम्बन्धी निर्णय न ले सके। पाकिस्तान अंग्रेजों की मिली–भगत से कश्मीर को अपने साथ मिलाना चाहता था। जब उसे विश्वास हो गया कि महाराजा व कश्मीर के अन्य नेता पाकिस्तान में विलय के हक में नहीं है तो उसने कश्मीर को जबरदस्ती हड़पने की योजना बनायी। पाक सैनिकों के साथ सीमांत क्षेत्र के कबाइलियों को इस अभियान के लिए तैयार किया गया। उन्हें धन और औरत का लालच दिया गया। यह सारी योजना गुप्त रूप से सितम्बर मास में ही तैयार हो गई। महाराजा व भारत सरकार को इस

की भनक न लग सकी। 22 अक्तूबर 1947 को जब पाक सैनिकों ने कबाइलियों को आगे कर मुज़फ्फ़राबाद पर धावा बोला व इसे कुछ ही घन्टों में तहस–नहस कर आग की भेंट कर दिया, लूट–पाट और कत्लेआम का नंगा नाच होने लगा; औरतों की अस्मत लूटी गयी व अपहरण होने लगा; महाराजा की फौजों के अधिकारी कर्नल नारायण का उसके ही सैनिकों द्वारा कत्ल कर सारे एमुनिशन पर कब्जा कर लिया गया, तब जाकर महाराजा को विवशता से भारत के साथ विलय–पत्र पर हस्ताक्षर कर वहाँ से फौज बुलानी पड़ी। क्योंकि प्रधान मंत्री नेहरु ने दो टूक शब्दों में कह दिया था कि जब तक राज्य का भारत के साथ विलय नहीं हो जाता, भारतीय सेना कश्मीर में नहीं भेजी जा सकती। तब तक ब्रिगेडियर राजेन्द्र सिंह के नेतृत्व में महाराजा के सैनिकों की टुकड़ी ने हमलावरों को बारामूला तक बड़ी वीरता से रोके रखा।

यह भी कहा जाता है कि कबाइली हमलावरों ने श्रीनगर की ओर बढ़ने की जगह रास्ते में लूट–पाट, बलात्कार व हत्याएँ करने में अपना अधिक समय नष्ट किया। यदि वह सीधे सैनिक अभियान के तहत आगे बढ़े होते तो हो सकता था कि वह अपनी पूर्व योजना के तहत श्रीनगर पहुँच जाते, जहाँ उनकी 26 अक्तूबर को महल पर कब्जा करने की योजना थी। इसी बीच भारत सरकार के प्रतिनिधि श्री मेनन के परामर्श पर महाराजा हरि सिंह श्रीनगर से 25 अक्तूबर की रात्रि को कूच कर जम्मू चले गये जहाँ से 26 अक्तूबर प्रातः विलय पत्र पर हस्ताक्षर कर दिल्ली भेज दिया।

मेजर सोमनाथ शर्मा के नेतृत्व में जब 4 कुमाऊँ की डी. कम्पनी को श्रीनगर जाने का आदेश हुआ तो उस समय मेजर शर्मा की बाजू की हड्डी टूटने (fracture) के कारण पलस्तर चढ़ा हुआ था परन्तु उन्होंने इस कठिन परिस्थिति में अपनी कम्पनी के साथ जाने का आग्रह किया और उन्हें जाने की स्वीकृति दी गई। श्रीनगर हवाई अड्डे पर

उतरते ही उन्होंने सुरक्षा का जायज़ा लिया। मेजर सोमनाथ शर्मा की कम्पनी को श्रीनगर हवाई अड्डे (बडगाम) की सुरक्षा की जिम्मेदारी दी गयी। वे केवल 100 सैनिकों की अपनी टुकड़ी के साथ वहाँ डट गये। दूसरी ओर सात सौ से भी अधिक पाकिस्तानी सैनिक व कबाइली जमा थे जो किसी भी हालत में हवाई अड्डे पर कब्जा कर श्रीनगर शहर को अपने नियंत्रण में करना चाहते थे। यदि महाराजा विलय–पत्र पर हस्ताक्षर करने में अधिक विलम्ब करते व भारतीय फौज और दो दिन नहीं आती तो हो सकता था कि पाक सेना अपने नापाक मंसूबे में कामयाब हो जाती। पाकिस्तानी सैनिक बड़े योजनाबद्ध तरीके से धीरे–धीरे आगे बढ़ रहे थे। उनके पास गोला–बारूद भी काफी मात्रा में था। परन्तु मेजर शर्मा साहस के धनी थे। इन्होंने हिम्मत नहीं हारी। उनका आत्म–विश्वास अटूट था। **मेजर शर्मा ने अपने मुख्यालय को सारी स्थिति से अवगत कराया और विश्वास दिलाया कि "जब तक मेरे शरीर में एक बूंद खून और मेरे पास एक जवान शेष है, तब तक मैं लड़ता रहूंगा।"**

दोनों ओर से लगातार गोलीबारी हो रही थी। कम सैनिकों और गोला बारुद के बाद भी मेजर की टुकड़ी हमलावरों पर भारी पड़ रही थी। 3 नवम्बर 1947 को शत्रुओं का सामना करते हुए एक हथगोला मेजर शर्मा के समीप आ गिरा जिससे उनका सारा शरीर छलनी हो गया। खून के फव्वारे छूटने लगे। इस पर भी मेजर ने अपने सैनिकों को हौंसला बढ़ाते हुए कहा "इस समय मेरी चिन्ता मत करो, हवाई अड्डे की रक्षा करो। दुश्मनों के कदम आगे नहीं बढ़ने चाहिए।"

मेजर सोमनाथ शर्मा के बलिदान से सैनिकों का खून खौल गया। उन्होंने तेज़ी से हमला बोल कर शत्रुओं को मार भगाया। यदि यह हवाई अड्डा हाथ से चला जाता तो पूरा कश्मीर पाकिस्तान के कब्जे में होता। बाद में उनकी जेब में एक छोटी (पॉकेट साइज) गीता पाई गई जिसे वह हमेशा अपने पास रखते थे। वह खाली समय इसी का मनन

करते जिसका उनके जीवन पर बड़ा प्रभाव था और इसी का असर इस महान् आत्मा की अंतिम साँस तक दिखाई दिया।

मेजर सोमनाथ शर्मा को मरणोपरांत परमवीर चक्र से सम्मानित किया गया। शौर्य और वीरता के इस अलंकरण के वे स्वतंत्र भारत के प्रथम विजेता हैं। नेपोलियन बोनापार्ट ने बिल्कुल सही कहा है –

"It is the cause and not the death that makes a martyr"–Napolean Bonpart

श्री वेद प्रकाश चड्डा

श्री वेद प्रकाश चड्डा, 1947 में कोटली में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के तहसील कार्यवाह का दायित्व निभा रहे थे। पाक सेना कबाइलियों की सहायता से धीरे–धीरे नगरों पर अपना कब्जा जमाने में प्रयासरत थी। जहाँ–जहाँ हिन्दू आबादी इक्ट्ठी व बहुसंख्यक थी, वहाँ तो शत्रु को लोहा लेना पड़ता परन्तु जहाँ वह अल्पसंख्यक थी, लोग इधर–उधर बिखरे हुए थे व भारतीय सेना की कोई सहायता न पहुँच सकी, वे लोग पाक सेना व कबाइलियों की बर्बरता के शिकार हो गये।

कोटली नगर में भी इसी प्रकार तीन मास तक बड़ी असमंजस की स्थिति बनी रही। नगर की अपनी आबादी तीन हज़ार के करीब थी परन्तु आस–पास के इलाकों से डर के कारण 7–8 हज़ार लोग इस नगर में अपनी सुरक्षा हेतु आ गये थे। महाराजा की फौज के थोड़े सैनिक वहाँ सुरक्षा के लिये तैनात थे। उनके पास एमुनिशन भी सीमित मात्रा में था। भिन्न–भिन्न घरों की छतों पर 30–35 के करीब मोर्चे स्थापित किये हुए थे। इन मोर्चों में से आधे मोर्चे स्वयंसेवकों ने संभाले हुए थे और शेष महाराजा के सैनिकों की देख–रेख में थे। मोर्चों पर तैनात सैनिकों के लिए खाने का प्रबन्ध नगर के लोगों के द्वारा ही किया जा रहा था। लोगों में देश प्रेम का जज़्बा इतना था कि स्वयं भूखे रह कर भी सैनिकों के खाने का प्रबन्ध तत्परता से करते।

उधर सैनिकों के पास एमुनिशन समाप्त हो रहा था। कर्नल बलदेव सिंह पठानिया जम्मू मुख्यालय में लगातार गोला बारूद एवं औषधियाँ भेजने हेतु वायरलेस सन्देश भेज रहे थे। जम्मू से भी यह सामान सड़क द्वारा आना सम्भव नहीं था, क्योंकि रास्ते में कबाइलियों द्वारा इसको लूट लिये जाने की आशंका थी। राज्य के सैनिकों द्वारा जम्मू मुख्यालय में जहाज से एमुनिशन इत्यादि भेजने हेतु वायरलेस से के.एफ.टी. (K.F.T.) का कोड चिन्ह भी भेजा गया ताकि सामान एक

सुरक्षित स्थान पर फेंका जा सके क्योंकि वहाँ उस समय कोई हवाई पट्टी नहीं थी। दुर्भाग्यवश यह वायरलेस सन्देश शत्रु की पहुँच में भी आ गया। एक तरफ जहाँ सैनिकों ने सनातन धर्म सभा के सामने खुले मैदान में के.एफ.टी. (K.F.T.) का निशान लगाया; वहीं दूसरी ओर शत्रुओं ने भी वहाँ से एक किलो मीटर की दूरी पर पेंग गाँव के खुले मैदान में ठीक ऐसा ही के.एफ.टी. का चिन्ह लगा दिया। यह स्थान शत्रु की पहुँच में था। यदि यह एमुनिशन वहाँ फेंका गया होता तो कोटली नगर के लिए बड़ी भयंकर स्थिति बन जाती। विमान चालक दो स्थानों पर के.एफ.टी. (K.F.T.) के चिन्ह देख कर सही निर्णय नहीं कर पाये कि कौन सही स्थान है। अतः उन्होंने दोनों चिन्हों के बीच बारूद की पेटियाँ उतार दीं। यह स्थान शत्रु की फायरिंग के अन्दर आता था।

सैनिकों के लिए बड़ी दुविधा की परिस्थिति बन गई। यह बारूद हासिल करना उनके लिए अति आवश्यक था। एक तो शत्रु से लोहा लेने के लिए इसके बिना और कोई उपाय न था, दूसरा यदि यह एमुनिशन शत्रु के हाथ चढ़ जाता तो यह और भी घातक सिद्ध हो सकता था। अपने सैनिकों की संख्या आगे ही बहुत कम थी जिससे बड़ी मुश्किल से कोटली नगर की सुरक्षा कर पा रहे थे। उन्हें बारूद लाने के इस जोखिम भरे अभियान पर भेजने का खतरा किसी कीमत पर भी नहीं लिया जा सकता था। क्योंकि यह मौत के मुहँ में जाने के समान ही था। सारी स्थिति को देखते हुए सैनिक अधिकारियों ने शहर के वरिष्ठ नागरिकों से मशवरा किया, इसमें संघ के अधिकारी भी शामिल हुए। सैनिक अधिकारी स्वयंसेवकों की वीरता व समर्पण भावना को मोर्चों पर देख चुके थे।

सारी स्थिति को गम्भीरता से विचार कर संघ के तहसील कार्यवाह श्री वेद प्रकाश चड्डा ने इस जोखिम भरे कार्य के लिए स्वयं नेतृत्व करने की पेशकश की और सभी युवाओं को इस में आगे आने का आह्वान किया। सभी स्वयंसेवक इस अभियान में कूदने के लिए एक दम तैयार हो गये परन्तु कार्यक्षमता देखते हुए केवल शारीरिक दृष्टि से 20 सक्षम नवयुवकों का ही चयन किया गया। सैनिक अधिकारियों ने सारे

दल को एमुनिशन तक कोहनी के बल चलने का अभ्यास शीघ्रता से करवाया। श्री वेद प्रकाश चड्डा इन सभी कार्यकर्ताओं को साथ ले इस अभियान में कूद पड़े। 28 अक्तूबर 1947 का यह दिन इतिहास के पन्नों में स्वर्ण अक्षरों में लिखा जायेगा।

सर्वप्रथम एक ट्रक को चारों ओर से तख्तों से बाँध कर तैयार किया गया। परन्तु कुछ ही दूरी पर जाते ही शत्रु की गोलियों से इस ट्रक के टायर फट गये। कुछ गोलियाँ सीधे ट्रक के शीशे पर लगीं। अभियान दल को मजबूरन ट्रक को वहीं छोड़ वापस आना पड़ा। इस दल के सदस्य बड़े साहस व उत्साह का परिचय दे कर श्री वेद प्रकाश चड्डा के साथ जमीन पर रेंग कर बारूद तक पहुँचने का प्रयास करने लगे। जहाँ एक तरफ सैनिक सनातन धर्म स्कूल में स्थित मोर्चे से शत्रु पर निरंतर फायरिंग कर रक्षा–कवच का कार्य कर रहे थे; वहीं दूसरी ओर शत्रु का फायर इस अभियान दल को बारूद तक पहुँचने में रोकने का प्रयास कर रहा था। शत्रु मोर्टार बमों का प्रयोग भी कर रहा था, उनकी फायरिंग आग उगल रही थी। इस ओर से एमुनिशन की कमी के कारण फायर कम था परन्तु साहस व उत्साह की कमी न थी। इस प्रकार दोनों तरफ की भीषम गोलीबारी के बीच श्री वेद प्रकाश चड्डा के नेतृत्व में साहसी वीर निरंतर अपनी मंजिल की ओर बढ़ रहे थे। कुछ पल बाद जैसे ही श्री चड्डा सिर ऊपर कर बारूद के स्थान का निरीक्षण करने लगे, शत्रु की एक सनसनाती हुई गोली उनके सिर के आर–पार हो गई। इस प्रकार एक साहसी वीर ने अपनी मातृभूमि की रक्षा हेतु अपना अमूल्य बलिदान दे दिया। उनकी शहादत ने शेष दल में एक नया जोश पैदा कर दिया।

दोपहर एक बजे तक कोटली के वीरों ने बारूद की 6 पेटियाँ शत्रु की लगातार गोली बारी के बीच लाने में सफलता प्राप्त कर ली। जहाँ विमान ने बारूद गिराया था, उसके निकट ही एक बड़े पुराने पेड़ पर शत्रु ने अपना मोर्चा बना लिया था, जहाँ से वह लगातार फायर कर रहा था। आधा दिन इसी प्रकार गोलियों की बौछार में बीत गया। कुछ न बनते

देख, सेना ने पहाड़ी के दूसरी ओर से चढ़ कर, उस पेड़ पर बने मोर्चे को नष्ट किया, जिसके बाद वहाँ से फायर आना बन्द हो गया। कोटली के वीरों ने अन्ततः अपनी जान को हथेली पर रख 21 बारूद की पेटियों को शत्रु के घेरे से लाने में सफलता प्राप्त कर ली। इसमें उन्हें श्री वेद प्रकाश चड्डा के अतिरिक्त सर्वश्री सोम राज, अमृत लाल, सोम प्रकाश, सरदार कल्याण सिंह व सुक्खा सिंह को भी अमूल्य बलिदान देना पड़ा।

"स्वयं विपदाओं से घिरे होने पर भी आस पड़ोस के गांवों से हिन्दुओं को आत्मीयता पूर्वक गले लगाना तथा उनकी हर प्रकार की आवश्यकता को पूर्ण करना कोटली निवासियों की उदारता का प्रमाण है। स्थानीय प्रशासकों द्वारा दिल छोड़ देने तथा सेना के घबरा उठने के बाद भी हिम्मत से नगर के मोर्चों को सम्भाले रखना, सैनिकों का मनोबल बढ़ाने में हर तरह से सहायता करना तथा किसी तरह के कुमुक के अभाव के बावजूद शत्रु को हर मोर्चे पर दो महीने तक उलझाए रखना कोटली की रा.स्व.संघ की शाखा संचालकों तथा वहाँ के नौजवानों के शौर्य, उन की कुशाग्र बुद्धि तथा उनके संगठन–कौशल तथा उनके साहस का परिचायक है। ऐसे उदारमना और वीरों की नगरी, वहाँ के निवासियों तथा वहाँ के अमर बलिदानियों को जिन्होंने हमारे समाज का गौरव बढ़ाया है मेरा प्रणाम।"

–श्री केदार नाथ साहनी

(भू.पू. राज्यपाल)

शहीद धर्म वीर खन्ना

श्री धर्मवीर खन्ना का बलिदान किसी भी माप दण्ड पर कम नहीं आँका जा सकता जो अपनी मातृ भूमि की रक्षा हेतु इतनी कम आयु में मौत के मुँह में जाने से नहीं घबराया बल्कि स्वयं अपने आप को इस जोखिम भरे कार्य के लिए आगे किया।

भारत–पाक विभाजन उपरान्त सितम्बर–अक्तूबर–नवम्बर 1947 जम्मू–कश्मीर राज्य के लिए बड़ा ही संकटमय समय था। पाक सेना कबाइलियों की सहायता से कश्मीर के अधिक से अधिक क्षेत्रों पर अधिकार प्राप्त करने की ताक में थी। जहाँ–जहाँ हिन्दू अल्पसंख्यक थे, वहाँ वह सरलता से काबिज हो जाते परन्तु जहाँ हिन्दुओं की आबादी अच्छी थी, वहाँ उनको संघर्ष करना पड़ता। महाराजा की फौज में भी मुस्लिम सैनिक अधिकतर पाक समर्थक थे या पाक सेना की सहायता कर रहे थे। शेष फौज के लिए इतने बड़े क्षेत्र में हिन्दुओं को सुरक्षा प्रदान करना कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव था। इन्हीं हालात में छोटे–छोटे गाँवों से हिन्दू जनता ने समीप के नगरों में सुरक्षा हेतु पलायन करना शुरू कर दिया। ऐसे ही मीरपुर ज़िला के कोटली नगर में भी 7–8 हज़ार शरणार्थी बाहर से आकर अस्थायी तौर पर रहने लगे।

महाराजा के सैनिक जो बड़ी कम संख्या में वहाँ उपलब्ध थे, कोटली नगर की सुरक्षा में जुटे थे। कोटली के नागरिक व राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्त्ता उनके साथ कंधे से कंधा मिला कर चल रहे थे। नगर पर शत्रु का घेरा कसता जा रहा था। उनका एक मोर्चा जो सड़क के उस पार ऊँचाई पर स्थित था काफी हानि पहुँचा रहा था। उस मोर्चे द्वारा गोली–बारी से शत्रु के नगर के अन्दर दाखिल होने की काफी सम्भावना थी। सेना ने संघ के अधिकारियों से इस मोर्चे को ध्वस्त

करने की योजना बनाई परन्तु किसी के वहाँ स्वयं जाकर अपना बलिदान दिये बिना यह कार्य सम्भव न था।

2 नवम्बर 1947 की यह घटना है जब संघ के एक युवा कार्यकर्ता श्री धर्मवीर खन्ना ने इस जोखिम भरे कार्य का भार अपने ऊपर लेते हुए अपनी सेवाएँ बड़ी तत्परता से अर्पित कीं। उसे इस अभियान की भावी हानि से भी अवगत कराया गया परन्तु उसमें अपनी माटी की रक्षा का जज़्बा इतना था कि वह अपने निश्चय से टस–से–मस न हुआ। वह रेंगता हुआ ग्रेनेड ले कर मोर्चे के पीछे जा विस्फोट करने में सफल हो गया। शत्रु का मोर्चा तो नष्ट हो गया परन्तु वहाँ से निकलते ही शत्रु की एक दनदनाती गोली से धर्मवीर शहीद हो गया। उस मोर्चे को जला डाला गया परन्तु शत्रु मोर्चे के पीछे बने रास्ते से भागने में सफल हो गये। इस प्रकार नगर एक सम्भावित त्रासदी से तो बच गया परन्तु इस अद्भुत साहसी कार्य में श्री धर्मवीर खन्ना को अपनी जान गंवानी पड़ी, जो देश एवं अपनी मातृ भूमि की रक्षा हेतु खुशी–खुशी निछावर हो गया।

"कोटली की रक्षा हेतु रियासत की सेना बहुत ही कम थी, फिर भी उनकी बहादुरी और अनथक प्रयत्नों के साथ–साथ कोटली निवासियों के योगदान के बल पर कोटली को बचाए रखा। कोटली के नौजवान हर प्रकार के खौफ–खतरों को झेलते हुए कठिन से कठिन काम में भी जान पर खेलने से ज़रा भी नहीं चूके।"

–कर्नल बलदेव सिंह पठानिया

कैप्टन राम प्रकाश

जुलाहका मौहल्ला जम्मू के निवासी राम प्रकाश का जन्म 12 दिसम्बर 1911 को श्री अमृत राय दत्ता के घर हुआ। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा श्री रणवीर हाई स्कूल व उच्च शिक्षा प्रिंस ऑफ वेल्ज कॉलेज (वर्तमान जी.जी.एम. साईंस कॉलेज) जम्मू में हुई। अक्तूबर 1934 में राज्य सेना में सैकेण्ड लेफ्टिनेंट के पद पर कमीशन प्राप्त कर इन्हें अगस्त 1941 में कैप्टन के पद पर उन्नति दी गई। दिसम्बर 1943 को यह 9वीं जे. एण्ड के. लाइट इन्फेन्टरी में कम्पनी कमांडर के पद पर आसीन हुए। भारत–पाक बंटवारे के समय इन्हें कोटली की सुरक्षा के लिए नियुक्त किया गया, जहाँ इन्होंने अपने शौर्य का खूब परिचय दिया।

कैप्टन राम प्रकाश रियासती सेना के निडर, कर्मठ, बहादुर सैनिकों में से एक थे। कोटली नगर की रक्षा में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा, जिसे हमेशा याद किया जायेगा। वह दिन–रात अपने कार्य में संलग्न रहते। भूख–प्यास की परवाह किये बगैर अपनी डयूटी पर तत्पर रहते। अक्तूबर–नवम्बर 1947 का समय जम्मू–कश्मीर राज्य के लिए बहुत संकटमय था। यदि कोटली नगर की सुरक्षा–व्यवस्था कैप्टन राम प्रकाश के हाथ में न होती तो शायद वहाँ भी पाक–अधिकृत कश्मीर के शेष नगरों की भाँति शत्रु ने उत्पात मचाया होता।

वर्ष 1931 के दंगों के उपरान्त कोटली नगर की सुरक्षा एक किले की भाँति कर दी गई थी। नगर में दाखिल होने के हर रास्ते पर दरवाजा था, जिन्हें बन्द करने पर नगर के अन्दर कोई आसानी से दाखिल नहीं हो सकता था। कैप्टन राम प्रकाश स्वयं सैनिकों की टुकड़ी ले नगर की सुरक्षा की देख–रेख करते। अपने दोनों हाथों में पिस्तौल रख कर हमेशा

सेना के आगे–आगे रहते और उनका साहस बढ़ाते। वह कहा करते थे कि वह गोली अभी नहीं बनी, जो उन्हें लग सके। कितना आत्मविश्वास था उनके अन्दर? यह इसी बात से पता चलता है।

15 नवम्बर 1947 रात्रि के 12 बजे की घटना है कि कबाइली रेंगते हुए ऊपरी दरवाजे की ओर बढ़े और उसे तोड़ने का प्रयास करने लगे। जब वह इस प्रयास में सफल न हो सके तो 4–5 पठान दरवाजे के ऊपर चढ़कर नगर के अन्दर दाखिल होने में सफल हो गये। शत्रु ने अन्दर दाखिल हो आग लगाना शुरू कर दिया। कई औरतें और बच्चे जो एक मकान में जमा हुए थे, बाहरी दरवाजा बन्द होने के कारण आग में झुलस गये। कैप्टन राम प्रकाश ने सारी स्थिति की समीक्षा कर अपनी सैन्य टुकड़ी को साथ लिये शत्रु का सामना करने स्वयं मैदान में कूद पड़े। शत्रुओं के बीच उनके नाम का इतना डर था कि उनका नाम सुनते ही शत्रु भाग उठते। जब आमना–सामना होने पर बलवाइयों ने पूछा, 'तुम कौन'? कैप्टन ने उत्तर दिया, "मैं कैप्टन राम प्रकाश", यह सुनते ही शत्रु के हाथ पाँव फूल गये और कहने लगे, "भागो, कैप्टन प्रकाश आ गया"। उनका नेता शेर खान गोली लगने से मारा गया जिससे उसके साथियों का हौंसला और पस्त हो गया। अब वह नगर से बाहर निकलने का रास्ता तलाशने लगे। लोगों ने निडर हो कर उन्हें बाहर जाने के स्थान पर नगर के अन्दर जाने का रास्ता बता दिया। इतने में उनका सामना फिर कैप्टन राम प्रकाश से हो गया। उन्होंने अपने सैनिकों व स्वयंसेवकों की सहायता से सभी को मार गिराया। इस प्रकार कोटली नगर एक बड़ी त्रासदी से बच गया।

एक और दिल दहला देने वाली घटना में माता भागवन्ती जी ने नगर की असुरक्षा की स्थिति को देखते हुए सभी मातृशक्ति को एक स्थान पर जमा कर विष की पुड़िया वितरित करते हुए कहा कि संसार में सतीत्व की रक्षा से बढ़कर और कोई चीज़ नहीं है। उन्होंने रानी पद्मिनी के मान–सम्मान की याद दिलाते हुए कहा कि यदि कोई ऐसी

नौबत आई तो यह विष खा कर मर जाना अपनी लाज खोने से बेहतर होगा। सभी यह जोखम भरा कदम उठाने को तैयार हुए ही थे कि उसी समय कैप्टन राम प्रकाश वहाँ आ पहुँचे और कहने लगे 'माता जी, अभी विष बाँटने का समय नहीं आया है, क्योंकि अभी राम प्रकाश जिन्दा है और उसके रहते कोई इन सबका बाल–बाँका नहीं कर सकता'। इस से सबका मनोबल बढ़ गया और इस प्रकार कोटली नगर एक बड़ी सम्भावित जान–हानि से बच गया।

जम्मू–कश्मीर में हालात सामान्य होने के उपरान्त कैप्टन राम प्रकाश को 5वीं जे. एण्ड के. लाइट इन्फेन्टरी में नियुक्त कर फिरोजपुर (पंजाब) में भेज दिया गया, जहाँ इन्होंने हुसैनी वाला बार्डर पर पाकिस्तानी सेना द्वारा हमले को पस्त कर सेना मैडल वीरता पुरस्कार प्राप्त किया व अपनी इन्फेन्टरी का नाम रोशन किया। इनकी सन्तान भी अपने पिता की भाँति बड़ी देशभक्त व होनहार निकली। दो लड़के भारतीय सेना में उच्च पद पर आसीन हुए व एक पुत्र बिहार केडर के आई.ए.एस. सेवा में नियुक्त हुआ।

कोटली नगर की सुरक्षा हेतु कैप्टन राम प्रकाश की सेवाओं को सदा ही याद किया जाता रहेगा।

कोटली
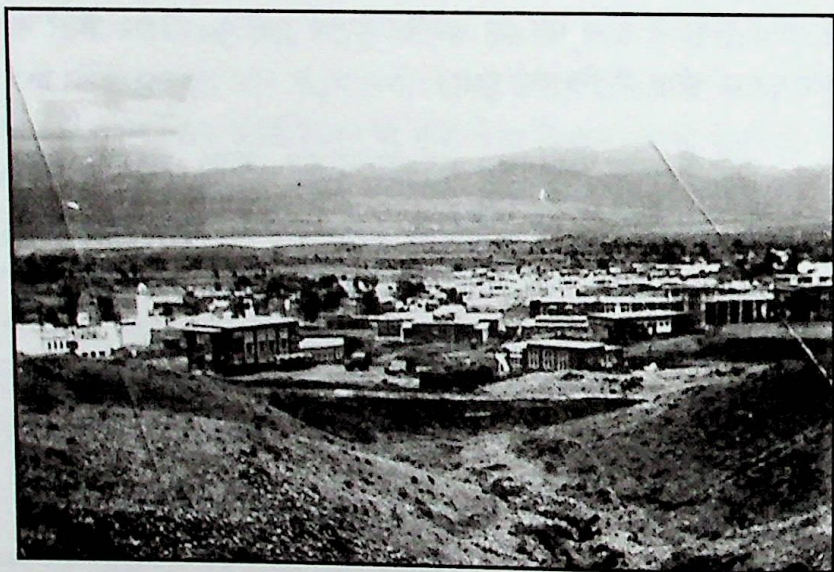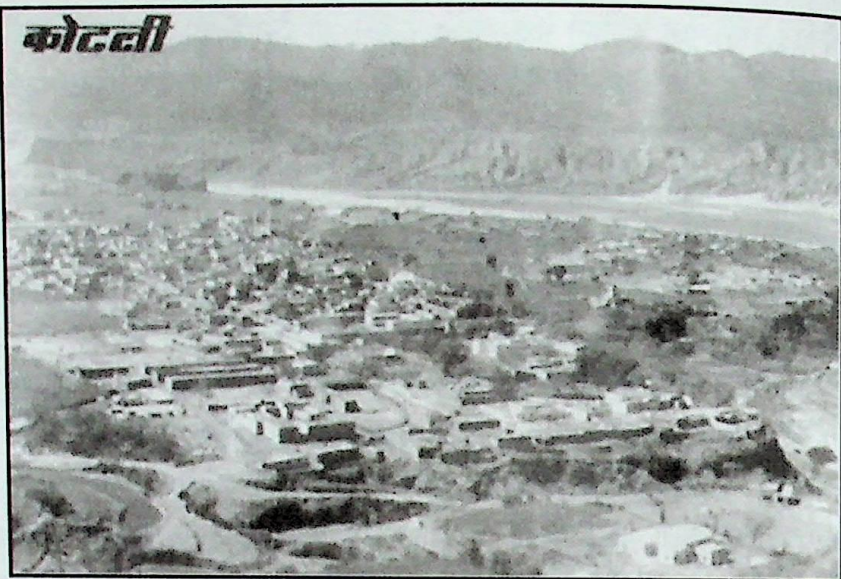
मीरपुर

कोटली वासियों का पलायन

कोटली में जानोमाल की अधिक हानि न होने के पीछे उस धरती का पावन होना भी समझा जाता है। इस नगर के देव स्थलों में पूरा वर्ष ही सत्संगमय वातावरण बना रहता था। देवस्वरूप सन्तों व महात्माओं का समय–समय पर इस नगर में आगमन होना भी बड़ा सहायक सिद्ध हुआ। एक दूसरे धर्मों के प्रति भी यहाँ की जनता के दिलों में कोई द्वेष–भाव नहीं पाया जाता था। हर धर्म के त्यौहारों में सभी समुदाय के लोग बढ़चढ़ कर भाग लेते थे। इस धरती को गर्व हासिल है कि यहाँ माता भागवंती जैसी पुण्य आत्मा ने जन्म लिया जिन्होंने अध्यात्मिक उन्नत्ति के साथ–साथ अपना सारा जीवन लोगों के कल्याण में लगा दिया।

कोटली के नागरिक महाराजा के थोड़े सैनिकों की सहायता के साथ लगातार तीन मास से अपनी धरती की रक्षा में दिन–रात जूझ रहे थे। गोला–बारूद की कमी के कारण सैनिकों का मनोबल लगातार गिर रहा था। उनकी वर्दी भी फट चुकी थी, नई वर्दी मिलने की सम्भावना भी कम थी। दिन–रात डयूटी पर तैनात रहने व आराम न मिलने के कारण सैनिक बुरी तरह थक चुके थे। इसी बीच 26 नवम्बर 1947 साँयकाल ब्रिगेडियर परेन्जपय के नेतृत्व में सैनिक टुकड़ी ने कोटली नगर में प्रवेश

किया। सारे शहर में खुशी की लहर दौड़ गयी। सैनिकों ने भी नई रसद देख कर राहत की साँस ली।

सेना के अधिकारियों ने नगर वासियों को बुला कर घोषणा कर दी कि अगले दिन प्रातः 10 बजे पूरे नगर को खाली करना है। लोग यह सुन कर सकते में आ गये। वह सोच भी नहीं सकते थे कि उन्हें अपना घर–बार अचानक इस प्रकार त्यागना पड़ेगा। लोगों ने सैनिक अधिकारियों से बड़ी तत्परता से कहा कि उन्होंने तीन मास से नगर को शत्रु से बचाए रखा है। उन्हें केवल 200–300 जवान दे दें, नगर के स्वयंसेवक आगे रह कर शत्रु से लोहा लेंगे और शत्रु के कब्जे से दूसरे इलाके भी खाली करवायेंगे। परन्तु अधिकारियों ने नागरिकों की एक न सुनी क्योंकि शायद उन्हें उच्च अधिकारियों से ऐसे ही आदेश प्राप्त हुए थे। इस प्रकार ब्रिगेडियर की अगुवाई में महाराजा के सैनिकों समेत 10–12 हज़ार नागरिकों का जत्था अगले रोज़ झंगड़ की ओर रवाना हुआ। करीब 10 मील पैदल चलने के बाद बीमार, बूढ़ों–बच्चों को ट्रक उपलब्ध करवाए गये। कड़ाके की सर्दी में लोग दिन–रात सफर कर किसी प्रकार जम्मू पहुँचे। इस प्रकार कोटली का खुशहाल कस्बा सियासी नेताओं की कुचालों के कारण वीरान हो गया। अलबत्ता एक संतोषजनक बात हुई कि नागरिकों का सैनिकों की देख–रेख/सुरक्षा में पलायन होने से मीरपुर व अन्य स्थानों की भाँति जानी नुक्सान न हुआ।

साहसी कुंदन लाल एवं मीरपुर शहर का पतन

4 नवम्बर 1947 से ही पाकिस्तानी सैनिकों व कबाइलियों ने मीरपुर की पहाड़ियों पर कब्जा कर के गोलाबारी आरम्भ की। उस समय वहाँ की जनसंख्या लगभग 25000 थी। मीरपुर शहर से 10 मील की दूरी पर जेहलम नदी के किनारे स्थित महाराजा की फौज को शत्रु द्वारा घेरने का प्रयास होने लगा। कुछ न बनते देख सैनिकों ने अपने मोर्चे को छोड़ दिया और शहर तक पीछे आ गये। इस प्रकार शत्रु शहर के निकट आ गया और चारों तरफ से आक्रमण करने लगा। शत्रु के लिए अब शहर पर कब्जा करना और आसान हो गया था। महाराजा के सैनिकों ने उस समय राहत की साँस ली जब भारतीय हवाई फौज ने शहर के आस–पास शत्रु के ठिकानों पर बम्ब गिराए। 14 नवम्बर को दोबारा भारतीय जहाजों ने आ कर कुछ असला गिराया जो कि महाराजा के सैनिकों के लिये बहुत आवश्यक था। लेकिन 24 घन्टे शत्रु से जूझते हुए सैनिकों के लिए यह असला कितनी देर चलता? इस प्रकार शत्रु का शिकंजा शहर के चारों ओर कसता चला जा रहा था।

उधर जम्मू में मीरपुर, भिम्बर, कोटली और पुंछ इलाकों में कबाइलियों के अत्याचार के समाचार निरंतर मिल रहे थे। लोगों ने उस समय के सैन्य कमांडर ब्रिगेडियर परांजपे से मिल कर इन इलाकों में फौज भेजने व हिन्दुओं की जानोमाल की सुरक्षा की गुहार लगाई। उन्होंने लोगों को पंडित नेहरू से मिलने की सलाह दी क्योंकि उसकी अपनी विवशता थी। फौज को शेख अब्दुल्ला के आदेश पर ही कूच करने के आदेश थे। 15 नवम्बर जब पंडित नेहरू जम्मू पधारे, लोगों का एक प्रतिनिधि मंडल उनसे मिला व पूरी स्थिति से अवगत कराया। परन्तु दुर्भाग्यवश नेहरू न तो कोई बात सुनने को तैयार थे और न ही ज़मीनी हकीकत जानने की उन्हें कोई दिलचस्पी थी। उन्होंने दो टूक उत्तर दिया कि जाओ शेख अब्दुल्ला से बात करो। शेख अब्दुल्ला के ऊपर इन

बातों का कोई असर नहीं हुआ। यदि लोगों की माँग मान कर इन इलाकों से पाक सेना को खदेड़ने हेतु ठोस कदम उठाए गये होते तो हजारों परिवारों के जानोमाल को बचाया जा सकता था। परन्तु कारण स्पष्ट था, शेख घाटी के अतिरिक्त किसी अन्य क्षेत्र को पाकिस्तान में जाने से रोकना नहीं चाहते थे। यदि कश्मीर का सारा क्षेत्र शत्रु से खाली करवा लिया होता तो यहाँ कश्मीरियों के स्थान पर पंजाबियों का वर्चस्व होता जो शेख और नेहरू को कदापि मंजूर नहीं था। **शायद इसी कारण यह पहेली अभी तक बनी हुई है कि भारतीय सेना की जम्मू कश्मीर राज्य में 27 अक्तूबर 1947 से मौजूदगी के बावजूद भी राज्य के इतने बड़े भाग पर शत्रु का कब्जा क्यों और कैसे हो गया और इसे क्यों खाली नही करवाया गया?**

इधर धीरे–धीरे मीरपुर शहर की सुरक्षा में लगे सैनिकों का असला समाप्त होने की कगार पर आ गया। बाहर से सहायता आनी बन्द हो गयी। खाद्य वस्तुओं व दवाइयों की भी किल्लत होने लगी। लोगों ने बड़े साहस का परिचय दे कर खाद्य सामग्री इक्ट्ठी कर जरूरतमन्द लोगों में वितरित की व सैनिकों के लिये खाने के पैकेट तैयार किये। 16 नवम्बर के बाद शत्रु के हमले तीव्र होने लगे। 19 नवम्बर को हमारे सैनिक बड़ी निराशाजनक स्थिति में पहुँच गये जब उन्होंने यह देखा कि उनके पास सैनिकों की संख्या व असला शत्रु से जूझने के लिए बहुत ही नगण्य है और आगामी केवल तीन दिन तक ही वह उनसे लोहा लेने की स्थिति में है। तभी हवाई फौज द्वारा कुछ असला प्राप्त होने पर उन्हें कुछ तसल्ली हुई। अगले दिन शत्रु शहर पर हमला कर एक तरफ से अन्दर दाखिल होने में सफल हो गया परन्तु नागरिकों व सैनिकों ने बड़ी वीरता से उन्हें वापस बाहर खदेड़ दिया। 21 नवम्बर को दुर्भाग्यवश वायरलेस खराब होने से सैनिकों का सम्पर्क बाहर से कट गया। 22–23 नवम्बर को पाक सैनिकों ने लगातार शहर के चारों ओर हमला जारी रखा। 24 नवम्बर की काली रात को अन्त में शत्रु भीषण हमला कर आधी रात शहर के अन्दर दाखिल होने में सफल हो गया।

25 नवम्बर 1947 की प्रातः संकटमयी परिस्थितियों में मीरपुर के वज़ीर वज़ारत ने अपने आफिसरों व सैनिकों के साथ अपनी असुरक्षा को देखते हुए बड़ी ही रहस्यमयी स्थिति में मीरपुर शहर को छोड़ जम्मू की ओर कूच करने का निश्चय किया और वहाँ के नागरिकों को उपद्रवियों के रहमोकरम पर छोड़ दिया। इससे सारे नागरिकों के बीच बड़ी अजीब स्थिति बन गई। सैंकड़ों नारियों ने अपनी लाज बचाने हेतु खुदकशी कर ली। कुछ लोग बाहर उजाड़ फौजी कैम्प में एकत्रित हो गये जहाँ जख्मी फौजी आकाश की ओर टकटकी लगाए लेटे थे। बूढ़े, बच्चे, औरतें अपने–अपने परिवारजनों को ढूँढ रहे थे।

महाशय कुन्दन लाल का साहसी कारनामा

जब मीरपुर शहर पर कबाइलियों ने हमला किया तो महाशय कुन्दन लाल संघ के स्वयंसेवकों द्वारा बनाये गये सुरक्षा मोर्चों में से एक में तैनात थे। जिस घर की छत पर यह मोर्चा था उसी घर पर कबाइली टूट पड़े। कुन्दन लाल जी ने छत से गोलियाँ दाग कर सात–आठ कबाइलियों को यमलोक पहुँचा दिया। कबाइली संख्या में बहुत थे। उन्होंने घर के दरवाजे तोड़ दिये और घर को आग लगा दी। महाशय कुन्दन लाल ने कोई उपाय न देख तीन मंजिली छत से छलांग लगा दी। तुरन्त अपने को सम्भाला और शत्रु की आँखों में धूल झोंककर कचहरी वाले कैंप में पहुँच गये।

फिर करीब 50 उपद्रवी कबाइलियों ने महाशय कुन्दन लाल के घर को घेर लिया। हाथों में लाठियाँ, सलाखें और चार पाँच देसी राइफलों के साथ इन लोगों ने इससे पूर्व कई घरों को जला कर राख कर दिया। महाशय जी ने इनको सबक सिखाने का निश्चय किया और राइफल ले छत पर चढ़ गये। इनके साथ इनकी छोटी बहन, जो पिस्तौल का निशाना साधने में सिद्धहस्थ थी, भी अपनी पिस्तौल के साथ इनकी सहायता के लिये छत पर जा पहुँची। महाशय जी के बड़े भाई भी देसी बन्दूक ले ऊपर पहुँच गये। इन तीनों ने फसादियों को ललकारा। उपद्रवियों ने घर को आग लगाने की नाकाम कोशिश की और दो चार

गोलियाँ छत की ओर दागते हुए पत्थरों की बौछार शुरू कर दी। कुन्दन लाल जी की बहन ने तुरन्त एक गोली से एक पठान की खोपड़ी उड़ा दी। वह वहीं ढेर हो गया। तुरन्त कुन्दन लाल और उनके भाई ने छः–सात फायर उपद्रवियों पर दाग दिये। तीन वहीं ढेर हो गये। उनकी लाशों को तड़पते छोड़ बाकी वहाँ से भाग खड़े हुए।

एक और घटनाक्रम में कुन्दन लाल जी ने किसी युवती की 'बचाओ, बचाओ' की आवाज सुनी। वह तुरन्त उधर हो लिये। दो फसादी गुण्डों ने युवती को घेर कर उसे दबोचने की कोशिश की। युवती भी डट कर दोनों का सामना कर रही थी। परन्तु उसने सहायता के लिये आवाजें लगाई। एक गुण्डे के हाथ में कुल्हाड़ा था। कुन्दन लाल जी ने उस के हाथ पर एक जोरदार घूंसा मारा और कुल्हाड़ा छीन लिया। इसी कुल्हाड़े से उन्होंने दोनों गुण्डों को मार गिराया। वह युवती अपने फटे कपड़ों के साथ अपने घर की ओर भागी।

कुन्दन लाल जी जब इन दरिन्दों को मार कर लौट रहे थे तो रास्ते में कुछ पठान फौजियों ने इन्हें घेर लिया। वह इनको समाप्त करने के इरादे से इन पर झपट पड़े। महाशय जी ने पूरी हिम्मत के साथ उनका मुकाबला किया। परन्तु 10–12 पठान सैनिकों के साथ वह अकेले कब तक भिड़ सकते थे। अंत में संघर्ष करते हुए वह शहीद हो गये। उपद्रवियों के लिए अब खुला मैदान था। उन्हें रोकने वाले महाराजा के सैनिक शहर छोड़ जा चुके थे।

इसी बीच दो बार भारतीय जहाज आकाश पर नजर आए परन्तु कुछ मदद किये वगैर वापस चले गये। शत्रु ने लोगों को निर्दयता से गोलियों से भून डाला। लगभग 18000 शहीद हो गये। 3500 के करीब ज़ख्मी लोगों को शत्रु द्वारा बन्दी बना लिया गया और 3500 के करीब नंगे पैर पैदल चल कर भूख और प्यास से बदहाली की अवस्था में किसी प्रकार जम्मू पहुँचे। इस प्रकार 25 नवम्बर 1947 को एक हँसता–खेलता शहर खण्डहर में तब्दील हो गया।
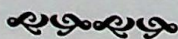
ब्रिगेडियर प्रीतम सिंह एवं पुन्छ का हवाई अड्डा

27 अक्तूबर 1947 को भारतीय सेना ने श्रीनगर हवाई अड्डे पर कदम रखते ही हवाई अड्डे की सुरक्षा सुनिश्चित करने के बाद शत्रुओं को बारामूला व उड़ी से खदेड़ कर ही दम लिया। उड़ी को आज़ाद कराने के बाद ब्रि. प्रीतम सिंह के नेतृत्व में कुमाऊँ रेजिमेंट का एक दस्ता पुंछ के लोगों की सुरक्षा हेतु पुंछ की तरफ चल पड़ा। पाकिस्तानी हमलावर दुम दबा कर भागने लगे और रास्ते के सारे नाके खाली दिखाई देने लगे। भारतीय फौजी हमलावरों से दो–दो–हाथ करने को बेताब थे। वह शत्रुओं को अपने जाल में फंसाने हेतु 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' के नारे लगाने लगे ताकि जिसे सुन कर कोई पाक हमलावर या कबाइली सामने आये और वह उसे मार कर अपनी बन्दूकों की प्यास बुझा सकें। हाजीपीर दर्रे के नीचे छांजल के नाले पर रियासती प्रशासन ने एक लकड़ी का पुल बनाया हुआ था। जिसकी सुरक्षा का जिम्मा नायब सूबेदार ब्रिज लाल व कुछ रिटायर्ड फौजी जवानों पर था। जब कुमाऊँ रेजिमेंट के जवान 'पाकिस्तान जिंदाबाद' के नारे लगाते पुल के निकट पहुँचे तो पुल के सुरक्षाकर्मियों ने इन्हें शत्रु समझ कर पुल को आग लगा दी। ब्रि. प्रीतम सिंह इस घटना से बहुत मायूस हुए। उन्हें मजबूरन तोपखाने को उड़ी वापस भेजना पड़ा क्योंकि उड़ी–पुंछ मार्ग का यही एक मात्र रास्ता था। ब्रि. प्रीतम सिंह अपने साथ 3–4 दस्ते लेकर पुंछ पहुँचने में सफल हो गये।

पुंछ के लोगों पर उस समय मृत्यु मंडरा रही थी। तहसील बाग, पलंदरी व आस पास के इलाकों में उपद्रवियों द्वारा मार काट कार्तिक (सितम्बर–अक्तूबर) के महीने से ही आरम्भ हो गई थी। अतः इन क्षेत्रों से काफी संख्या में हिन्दुओं ने सुरक्षा कारणों से पुंछ में आकर शरण ली।

इन लोगों को कई दिन–रात पैदल सफर कर पुंछ पहुँचना पड़ा। बिमार व न चलने के काबिल सदस्यों को इन्हें मजबूरन वहीं छोड़ना पड़ा। **इन हालातों में साढ़े छः फुट लम्बे कद वाला व्यक्तित्व, चेहरे पर तेज, दिल में निडरता, देश भक्ति का जज़्बा व युद्ध कौशल में निपुण ब्रि. प्रीतम सिंह पुंछ की जनता को एक देवता स्वरूप प्रतीत हुआ।**

ब्रि. प्रीतम सिंह ने पुंछ पहुँचते ही रियासती प्रशासन से छाजंल पुल के नव निर्माण का प्रस्ताव रखा। चीफ इंजीनियर श्री दौलत राम शर्मा ने इस साहसी कार्य के लिए जिम्मा लिया और अपने कुछ साथियों को लेकर वहाँ चल पड़े। परन्तु दुर्भाग्यवश शत्रु के घेरे में आकर शहीद हो गये। ब्रि. प्रीतम सिंह को जब यह दुःखद समाचार मिला तो बड़े मायूस हो कर उन्होंने श्री शर्मा का शव वहाँ से लाने का इन्तज़ाम किया और उनका अंतिम संस्कार पूरे राष्ट्रीय सम्मान के साथ पुंछ नगर में किया गया। जिसमें बड़ी भारी संख्या में लोग शामिल हुए।

जब कुमाऊँ रेजिमेंट का सैनिक दस्ता पुंछ पहुँचा तब वहाँ की हालत बहुत खराब थी, शहर का पतन लगभग हो चुका था। शत्रु जबरदस्त गोलाबारी कर रहा था और डोगरा फौज का गोला बारूद समाप्ति की कगार पर था। शत्रु चारों मार्गों से आगे बढ़ता ही जा रहा था। शहर के आस पास के 4–5 मील के इलाके को छोड़कर सर्वत्र शत्रु का अधिकार हो चुका था। पाकिस्तानी जबरदस्त नाकाबंदी कर भारी गोलाबारी कर रहे थे।

ब्रिगेडियर प्रीतम सिंह ने पुंछ की धरती पर कदम रखते ही वहाँ की सुरक्षा व मोर्चाबन्दी का जायज़ा लिया। रियासत की फौज के कमांडर किशन सिंह से जानकारी ली और मोर्चाबन्दी कर शत्रु को पीछे धकेलना शुरू कर दिया। कठिनाई यह थी कि पुंछ के चारों ओर शत्रु की घेराबन्दी होने के कारण उसका संबध सब ओर से कट गया था। अब बाहर से मदद आने के लिए कोई जमीनी रास्ता नहीं था। केवल

हवाई जहाजों से ही मदद आ सकती थी। पुंछ में तो हवाई अड्डा था नहीं जिस पर सेना के जहाज उतर सकें। इस समस्या के समाधान के लिये ब्रिगेडियर प्रीतम सिंह ने संघ के अधिकारियों, पुंछ के प्रमुख नागरिकों व बाहर से आये हजारों विस्थापितों के प्रमुख व्यक्तियों की एक बैठक बुलाई तथा उनसे हवाई अड्डे के निर्माण का प्रस्ताव रखा। सब उत्साहपूर्वक तैयार हो गये। संघ के प्रमुख अमृत सागर के नेतृत्व में सैंकड़ों नौजवानों ने हवाई अड्डा बनाने का संकल्प लिया। स्थान तय होने पर उसकी सफाई का अभियान शुरू हुआ। बड़े–बड़े पेड़ काट डाले गये। कई सरकारी भवनों को गिरा कर मलवे को वहाँ से उठा दिया। इस अभियान में एक पुराने मन्दिर के खंडहरात भी मिले जिसमें पाँच फुट लम्बा और डेढ़ फुट की गोलाई वाला एक शिवलिंग भी पाया गया। ऐसा लगता था कि किसी ज़ालिम व तंगदिल हुक्मरान ने यह मन्दिर गिराया हो।

इस हवाई अड्डे को तैयार करने में लगभग आठ हजार आदमी लगे जिनमें स्वयंसेवकों के साथ–साथ अन्य नागरिकों, जवानों व बुजुर्गों का अतुलनीय योगदान रहा। काम दिन–रात चला और 72 घंटे के लगातार सामूहिक प्रयास से हवाई पट्टी तैयार हो गयी और हवाई जहाज उतरना प्रारम्भ हो गये। नित्य लगभग 35 जहाज उतरने लगे। शत्रु से घिरे इस खतरनाक क्षेत्र में सब से पहले सेना का डेकोटा विमान उतारने का साहस प्रसिद्ध हवाबाज मेहर सिंह ने दिखाया। इतने कम समय में जनता के अपने परिश्रम से एक हवाई पट्टी का तैयार होना अपने आप में एक अनूठा उदाहरण है, जो संसार में शायद ही कहीं मिलता हो।

18 मघर 2004 विक्रमी (दिसम्बर 1947) को जब भारतीय सेना का पहला विमान उतरा तो नागरिकों की खुशी का ठिकाना न रहा। वहाँ हजारों की संख्या में मर्द, औरतें, बच्चे व बुजुर्ग उस विमान व उसके चालक का स्वागत करने हेतु 'भारत माता की जय' के नारे लगाते हुए हवाई अड्डे के चारों ओर उमड़ पड़े। ब्रिगेडियर प्रीतम सिंह व विमान के

पायलट (मेहर सिंह) को फूलों से लाद दिया गया। लोगों को जिन्दा रहने की किरण नजर आने लगी। इस दुशवार कार्य का सेहरा ब्रि. प्रीतम सिंह को जाता है, जिसके फौजी नेतृत्व व कुशलता के कारण हज़ारों लोग मौत के मुहँ में जाने से बच गये और पुंछ पर पाक का कब्जा न हो सका।

विमानों द्वारा भारतीय सेना की भारी कुमुक आ गई और युद्ध का पासा पलट गया। दुश्मन सिर पर पैर रख कर भाग खड़ा हुआ। इस प्रकार पुंछ शहर पाकिस्तानियों के हाथों जाते–जाते बच गया और वहाँ के नागरिक एवं बाहिर से आये हज़ारों विस्थापित भी मौत के मुँह में जाने से बच गये। इनमें बड़ी संख्या में लोगों को विमान द्वारा जम्मू सुरक्षित पहुँचाया गया।

इस प्रकार ब्रिगेडियर प्रीतम सिंह की सूझ–बूझ एवं युद्ध कौशल के कारण पुंछ शहर एक भीषण त्रासदी से बच गया। शत्रु अपने नापाक इरादों में सफल न हुआ। मृत्यु का जो ताण्डव उसने मीरपुर, मुज़फ्फ़राबाद आदि नगरों में खेला था, उसे यहाँ दोहराने का मौका न मिल सका।

1947 (पुंछ में नवनिर्मित हवाई पटट्ी पर उतरते हुए डकोटा हवाई जहाज एवं पलायन करते विस्थापित नागरिक)

राजौरी का पतन एवं देवियों का जौहर

राजौरी केवल ऐसा शहर था जहाँ शत्रुओं को, करीब 6 मास तक काबिज रहने पर, इसे छोड़ने पर मज़बूर होना पड़ा। इसी प्रकार भारतीय फौज के लिए यह कोई दुर्गम कार्य नहीं था कि ऐसे ही अन्य इलाके जैसे भिम्बर, कोटली, मीरपुर, मुज़फ्फ़राबाद आदि, भी शत्रु से खाली करवाये जाते। परन्तु हमारे सियासी नेताओं की कूटनीति ही ऐसी थी कि वह शायद इन इलाकों को वापस नहीं लाना चाहते थे। फौज के हाथ बन्धे हुए थे, उन्हें इन्हीं नेताओं के आदेश पालन करने की विवशता थी।

राजौरी कस्बे में सितम्बर–अक्तूबर 1947 से ही भय का वातावरण छाने लगा था। आस–पास के इलाकों से उपद्रवियों व कबाइलियों के उत्पात की घटनाएँ निरंतर आ रहीं थीं। लोग अपनी रक्षा के लिए पूरे कस्बे में लगातार चौकसी बरत रहे थे। आस–पास के ग्रामों से दंगाइयों के डर से हिन्दू राजौरी नगर में आ कर शरण लेने लगे। लोगों के पास, हथियार, नाममात्र चन्द देसी बन्दूकें थीं। केवल एक सेवा निवृत्त सैनिक के पास दो नाली बन्दूक थी। रियासी के रा.स्व.संघ के कार्यकर्ता श्री देवेन्द्र शास्त्री ने लोगों को हथियार रखने का परामर्श दिया परन्तु किसी ने उसकी बात को महत्त्व नहीं दिया।

महाराजा की फौज के कुछ ही सैनिक वहाँ सुरक्षा हेतु तैनात थे। जब लोगों को यह आभास होने लगा कि हालात दिन–ब–दिन खराब हो रहे हैं तो उन्होंने राजौरी खाली करने का निश्चय किया। जाने के लिए घोड़े इत्यादि मंगवा लिये गये। यह घटना दिवाली के ठीक एक सप्ताह पहले की है। परन्तु जब वहाँ के तहसीलदार हज़ारी लाल को इस बात का पता चला तो उसने लोगों को बुला कर उनकी सुरक्षा का आश्वासन देकर उन्हें शहर से न जाने का आग्रह किया, जिस कारण लोगों ने अपना निश्चय बदल दिया। परन्तु यह आश्वासन केवल मौखिक ही रहा। शत्रु का घेरा प्रतिदिन शहर पर कसता जा रहा था। प्रत्येक रात्रि को शत्रु शहर पर फायर कर लोगों को भयभीत कर रहा था। अन्त

में शत्रु दिवाली वाले दिन शहर के अन्दर दाखिल होने में सफल हो गया और भीषण मार–काट का ताण्डव होने लगा। पूरे देश में जहाँ एक तरफ दिवाली मनाई जा रही थी, वहीं राजौरी वासियों के लिए यह काल का ग्रास बन गई।

जब राजौरी की जनता को यह आभास हो गया कि अब राजौरी का बचना असंभव है क्योंकि बाहिर से कोई सहायता नहीं आ रही थी तो सर्वत्र हाहाकार मच गया। अब राजौरी की पुत्रियों के बलिदान की बारी थी। उन्होंने सोचा कि अब हमारी परीक्षा की घड़ी आ गई है। प्राचीन काल में देवियाँ ऐसे अवसर आने पर जिस प्रकार अपने सतीत्व की रक्षा करती थीं, वही आत्म–बलिदान का, जौहर का, शहीदी का रास्ता अपनाने का उन्होंने भी निश्चय किया और ज़हर की पुड़ियों का वितरण किया गया। यह ज़हर भी केवल जानवरों को मारने वाला एक स्थानीय केमिस्ट की दुकान से उपलब्ध हो सका। हर देवी, स्वयंसेवकों से, वह प्रसाद पाने आगे बढ़ रही थीं। छीना–झपटी सी मच रही थी, मानों दिवाली की मिठाई बंट रही हो।

इधर इस जौहर की तैयारियाँ चल रही थीं और उधर हमलावरों ने कत्लेआम शुरू कर दिया। जब शत्रु तहसील के निकट आता दिखाई दिया तो इन देवियों ने अपने हाथ के जहर को मिठाई की तरह अपने मुँह में रख लिया।

जहर खाते ही देवियाँ शव बन कर धरती माता की गोद में सोने लगीं। एक जानकारी के अनुसार 1700 देवियों ने इस प्रकार जौहर किया। जिन्हें जहर नहीं मिल सका, उन्होंने अपने परिजनों से आग्रह किया कि "हमारी जीवन–लीला समाप्त कर दो, नहीं तो कबाइली हमारी दुर्गति करेंगे।" और ऐसा ही किया गया। उनके परिजन उनके सिर पर सोना–चाँदी, गहने व रुपये ऐसे न्यौछावर कर रहे थे मानों वे लक्ष्मीपूजन हेतु आयोजित यज्ञ में अपनी सम्पत्ति की आहुतियाँ डाल रहे हों।

अनेक स्थानों पर जहाँ–जहाँ महिलाएँ एकत्रित थीं, उन्होंने इसी प्रकार अपनी जीवन–लीला समाप्त कर ली। चितौड़ के जौहर की याद

को उन्होंने ताजा कर दिया तथा एक नया तेजस्वी इतिहास अपने बलिदान से लिख दिया।

बड़े ही दुःख का विषय है कि जिस तहसील अधिकारी ने सप्ताह पूर्व लोगों को राजौरी खाली न करने का आग्रह किया व सुरक्षा का आश्वासन दिया, वही अधिकारी उसी काली दीवाली वाली रात को सैनिकों की बची–खुची टुकड़ी के साथ रात्रि के 12 बजे बिना किसी को बताए जम्मू की ओर कूच कर गया। यदि लोगों ने अपनी पूर्व योजना के अनुसार शहर खाली कर दिया होता तो जान व माल की बड़ी हानि से बचा जा सकता था। दीवाली की इस भयानक रात को शत्रु ने शहर में मार–काट शुरू कर दी। एक ओर जहां औरतों ने जौहर में अपनी लीला समाप्त कर दी, वहीं दूसरी ओर पुरुष वर्ग के बचे–खुचे लोग अपनी जान बचाने भिन्न–भिन्न दिशाओं में छोटी–छोटी टुकड़ियों में निकल गये जिनमें कुछ ही भाग्यशाली सकुशल जम्मू पहुँच सके। बड़ी संख्या में लोग दंगाइयों के हाथों रास्ते में शहीद हो गये। इस प्रकार राजौरी शहर का पतन हुआ और वहाँ बलवाइयों का कब्जा हो गया जो करीब 6 माह बाद भारतीय सेना ने अपने अधिकार में लिया।
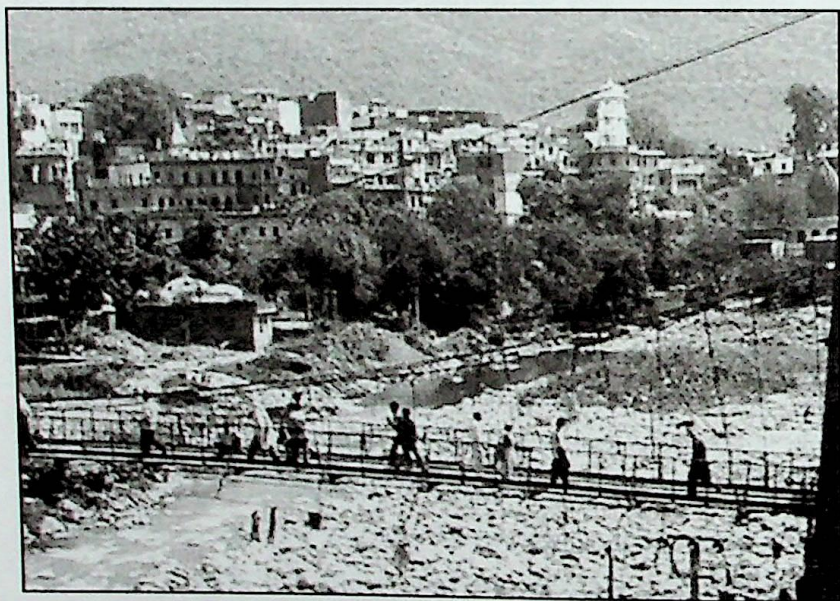
(राजौरी नगर के चित्र)

मुज़फ्फ़राबाद

मुज़फ्फ़राबाद इस समय पाक अधिकृत कश्मीर की राजधानी है। यह पाक अधिकृत कश्मीर का अब एक महत्वपूर्ण स्थान है। मुज़फ्फ़राबाद के निकटवर्ती स्थान बड़े रमणीय हैं। 200 कि.मी. लम्बी नीलम वादी इसके उत्तर और उत्तर–पूर्व में स्थित है। यहाँ के बर्फीले पर्वत, ऊँची चोटियाँ, घने जंगल, कलकलाती नदियाँ मन को मोह लेने वाली हैं। यह इलाका पर्वतारोही लोगों का एक विशेष आकर्षण का केंद्र बिन्दु है।

विश्व प्रसिद्ध तीर्थ स्थान शारदा यहाँ से 136 कि.मी. दूरी पर स्थित है। यह हिन्दुओं विशेषकर कश्मीरी पंडितों का पवित्र पूजा स्थल है। इस के सामने शारदी और नारदी नामक दो चोटियाँ हैं। शारदा में प्राचीन विश्वविद्यालय के खंडहरात मौजूद हैं। 1947 से पहले यह हिन्दुओं का एक बड़ा प्रसिद्ध तीर्थ स्थल था। राजा–महाराजा अक्सर यहाँ शारदा देवी के दशनार्थ आया करते थे। जगत गुरु शंकराचार्य भी इस स्थान पर भी देवी की पूजा अर्चना करने हेतु आ चुके हैं। देश–विदेश से बड़ी संख्या में श्रद्धालु इस स्थान की यात्रा करते थे। परन्तु 1947 के बाद यह स्थान अब श्रद्धालुओं की पहुँच से बाहर हो गया है।

स्वतंत्रता से पहले मुज़फ्फ़राबाद जम्मू कश्मीर राज्य का एक महत्वपूर्ण इलाका था जो झेलम व कृष्ण गंगा नदियों के संगम स्थल दौमेल की सीमा पर स्थित था। यहाँ की जन संख्या 5–6 हज़ार के करीब थी। परन्तु भारत की स्वतंत्रता के उपरान्त इस क्षेत्र में पाक हमले की आशंका बढ़ने लगी और निकटवर्ती ग्रामीण इलाकों से कई हिन्दू परिवार अपनी सुरक्षा की खातिर घर–बाहर छोड़ यह सोच कर यहां आ गये कि शायद वह यहाँ सुरक्षित रह सकेंगे।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की शाखा यहाँ प्रतिदिन लगती थी। संघ के कार्यकर्ता भावी खतरों को देख अपनी सुरक्षा की तैयारी में जुट गये

और नवयुवकों को इस दिशा में तैयार करने लगे। परन्तु उन्हें शायद इस बात का आभास बिल्कुल नहीं था कि शत्रु अचानक इतने शीघ्र उनके नगर को घेर लेगा और उन्हें अपनी रक्षा करने का मौका ही नहीं देगा। दूसरा कारण यह भी था कि लोगों को विश्वास नहीं था कि नगर से दस किलोमीटर दूरी पर स्थित महाराजा के सैनिकों की रामकोट चौकी इस प्रकार सरलता से आत्मसमपर्ण कर देगी।

मुज़फ्फ़राबाद की आबादी में अधिकतर हिन्दू व सिक्ख थे। जब अगस्त–सितम्बर में राज्य के हालात बिगड़ने लगे तो वहाँ रहने वाले मुस्लिम परिवार भावी आशंकाओं से नगर छोड़ मुस्लिम–बहुल ग्रामीण इलाकों में पलायन कर गये। भारत की स्वतंत्रता के बाद पाकिस्तान पूरे कश्मीर को अपने क्षेत्र में मिलाना चाहता था। परन्तु महाराजा द्वारा आनाकानी करने पर उसने राज्य पर दबाव डालने के लिए दूसरे हथकंडे अपनाने शुरू कर दिये। मुज़फ्फ़राबाद की जीवन रेखा (Supply Line) एब्बटाबाद, कोमरी के मार्ग से पाकिस्तान से आती थी जिसे पाक सरकार ने महाराजा पर पाक में विलय हेतु दबाव डालने के लिए बंद कर दिया। मुज़फ्फ़राबाद के एक ओर अंतिम चौकी रामकोट 10 कि. मी. की दूरी पर थी एवं दूसरी ओर यह नगर कोहाला से 20 किलोमीटर दूर था।

माह सितम्बर से ही पाक हमले की आशंका को देखते हुए नागरिकों एवं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्ताओं ने आत्मरक्षा की तैयारी शुरू की। सिगरेट के डिब्बों में छोटे देसी बम्ब बनाने आरम्भ किये। राज्य की अंतिम चौकी रामकोट पर महाराजा की मिलीजुली फौज थी। 21 अक्तूबर रात्रि को जब कबाइलियों व पाक सेना ने इस चौकी पर आक्रमण किया तो मुस्लिम सैनिकों ने पूर्व नियोजित षडयंत्र के तहत बिना किसी विरोध के आत्मसमर्पण कर दिया। पाक सेना ने चौकी के सारे हथियारों पर कब्जा करके हिन्दू सैनिकों को या तो कत्ल कर दिया या फिर बंदी बना लिया। इस प्रकार शत्रु बड़ी सरलता से 22 अक्तूबर प्रातः मुज़फ्फ़राबाद नगर में प्रवेश करने में सफल हो गया। पाक

सेना के कर्नल अफरीदी के नेतृत्व में पूरे नगर में मौत का तांडव शुरू हो गया। वज़ीर वज़ारत, श्री दीना नाथ मेहता को गोली से उड़ा दिया गया और हिन्दू व सिक्खों को देखते ही गोली मारने के आदेश दिये गये। सिक्खों को चुन–चुन कर निशाना बनाया गया। सभी गुरूद्वारे, मन्दिर और बड़े–बड़े रिहायशी मकान जला कर धराशाही कर दिये गये। इस प्रकार एक बसा बसाया नगर कुछ ही पलों में खंडहर में तबदील हो गया।

कुछ लोग जान बचा कर पैदल श्रीनगर की ओर कूच कर गये जिनमें कुछ ही सौभाग्यशाली पैदल व टांगों पर सकुशल श्रीनगर पहुंच सके। अधिकतर लोग रास्ते में कबाइलियों द्वारा मारे गये। कबाइलियों द्वारा कई नौजवान लड़कियों को पकड़ कर रावलपिंडी ले जाया गया और वहाँ मंडी बाजार में पांच–पांच रूपये में इन की बोली लगाई गई। कबाइलियों ने अत्याचार की सभी हदें पार कर दीं। कई नौजवान बच्चों को लाईन में खड़ा कर तलवार व गोली से समाप्त कर दिया गया। कई औरतों ने अपनी लाज बचाने हेतु कृष्ण गंगा नदी पर बने पुल से छलांग लगा कर अपनी जीवन लीला समाप्त की।

कुछेक भाग्यशाली परिवार चोरी छिपे ग्रामीण इलाकों में अपने परिचित मुस्लिम समुदाय वर्ग के घरों में शरण लेने में सफल हुए। यहाँ यह छः मास तक अपने दो कपड़ों में ही किसी प्रकार छिप कर अपनी जान बचा सके। कुछ परिचित लोग इन पर तरस खाकर इन के भोजन का प्रबन्ध कर देते थे। जिससे ये अपने परिवार का निर्वाह कर सके। दिन में कबाइली स्थान–स्थान पर इनको ढूंढते और जिस कारण यह अपनी लड़कियों को अन्दर छिपा देते ताकि उनकी कुदृष्टि उन पर न पड़े। पाक अधिकृत इस इलाके में सरकार स्थापित होने और मुज़फ्फ़राबाद को इस नये राज्य की राजधानी घोषित करने के बाद हिन्दुओं पर कबाइली अत्याचार कुछ हद तक कम हुए।

छः मास के लम्बे संघर्ष व संकट की परिस्थितियों में रहने के उपरान्त इन बचे हुए हिन्दू परिवारों को रेडक्रॉस द्वारा अटारी के रास्ते भारत लाया गया। जब इन लोगों को भारत वापस लिया जाने लगा तो कई हिन्दू नौजवानों को शंका पैदा हुई कि कहीं रास्ते में उनका कत्ल न कर दिया जाये। इस खतरे को भांपते हुए उन्होंने इस्लाम धर्म ग्रहण कर वहां ही रहना स्वीकार किया और वहाँ की लड़कियों से विवाह कर अपना जीवन यापन करने लगे। आज भी ऐसे कई परिवार हट्टियां दोपट्टा में रह रहे हैं। वर्ष 2008 में आए भयानक भूचाल के कारण इस क्षेत्र में बहुत भारी जानोमाल की हानि होने की पुष्टि हुई है।

(मुज़्ज़फ़राबाद शहर)

गिलगित व सकर्दू
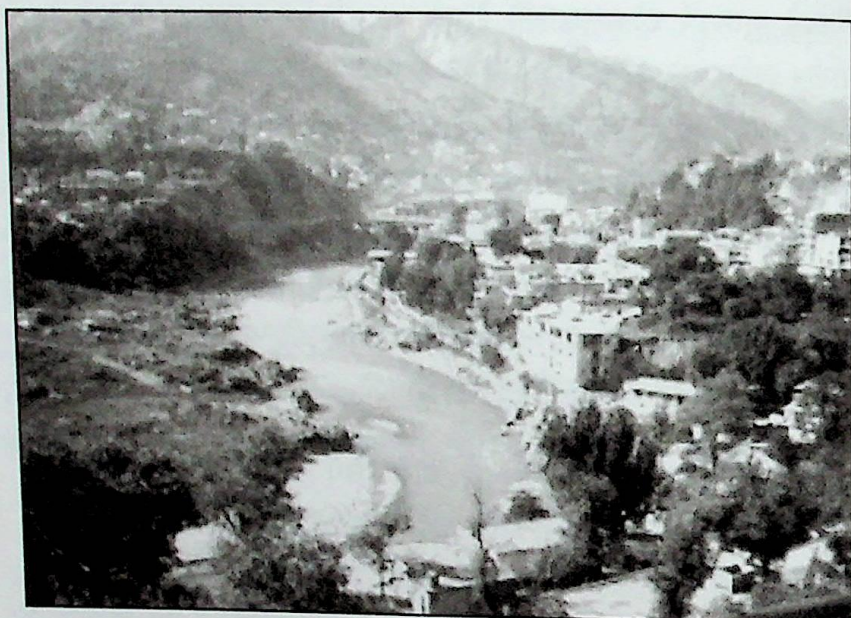
फरवरी 1846 में सिक्ख सेना की हार के उपरान्त 9 मार्च 1846 को 'लाहौर संधि' पर हस्ताक्षर हुए, जिसके अंतर्गत सिक्ख शासकों को व्यास और सतलुज के बीच के सारे क्षेत्र पर अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार कर उन्हें एक करोड़ रूपया जंग का हरजाना देना पड़ा। सिक्ख शासन के तत्कालीन प्रधानमंत्री लाल सिंह ने हरजाने के स्थान पर ब्रिटिश शासकों को जम्मू–कश्मीर समेत सारा पहाड़ी क्षेत्र देना मान लिया। अंग्रेज़ प्रशासन ने गुलाब सिंह को पूरे जम्मू कश्मीर का हुक्मरान बनाने की पेशकश की अगर वह हरजाने की रकम दें। यह रकम कम करके 75 लाख कर दी गई क्योंकि अंग्रेज़ हकूमत ने कांगड़े को मिलाकर रावी और व्यास के बीच का क्षेत्र अपने पास रखने का निश्चय किया। इस प्रकार 'अमृतसर संधि' पर हस्ताक्षर हुए जिस के फलस्वरूप नयी रियासत जम्मू–कश्मीर का गठन हुआ। इस संधि से राजा मियाँ गुलाब सिंह और उसके उत्तराधिकारियों को सदा के लिए कश्मीर पर पूरा स्वतंत्र आधिपत्य दिया गया और उन्हें 'कश्मीर का महाराजा' नामाँकित किया गया। इस तरह महाराजा गुलाब सिंह जम्मू–कश्मीर और लद्दाख व गिलगित, चिलास और बलटिस्तान के पूरे क्षेत्र के स्वामी बन गये।

ब्रिटिश प्रशासन ने गुलाब सिंह का पूरे कश्मीर पर आधिपत्य स्वीकार तो कर लिया, परन्तु मध्य एशिया और भारत के अन्य भागों की गतिविधियों के कारण वह इस क्षेत्र में दखल अंदाजी करने लगे। 1857 के सैनिक विद्रोह के बाद ब्रिटिश शासक कश्मीर पर अपने सैनिक कब्जे का विचार करने लगे परन्तु 1860 में मध्य एशिया में रशिया की मौजूदगी से चिंतित होकर उन्होंने महाराजा पर छितराल और याशीन पर रशिया के असर को रोकने हेतु, अपने आधिपत्य क्षेत्र में लाने का परामर्श दिया। इस तरह सन् 1877 में 'गिलगित एजेन्सी' का गठन हुआ और ब्रिटिश द्वारा मेजर जॉन बिदुल्फ को प्रथम राजनैतिक प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त किया गया। इस प्रतिनिधि को 1881 में वापस बुला लिया गया। परन्तु छितराल में अफगान के प्रभाव एवं मध्य एशिया में रशियन फौजी

गतिविधियों को देखते हुए वर्ष 1889 में इसे दोबारा नियुक्त किया गया। इसी बीच वर्ष 1878 में छितराल के मेहतर (शासक) ने डोगरा आधिपत्य स्वीकार कर हर तीसरे वर्ष डोगरा प्रशासन को शुल्क/उपहार देना आरम्भ कर दिया।

रशियन क्रांति के कारण ब्रिटिश प्रशासन की इस क्षेत्र में रुचि/चिन्ता बढ़ने लगी; जिस कारण महाराजा को 26 मार्च 1935 को मजबूरन 'गिलगित एजेन्सी' ब्रिटिश सरकार को 60 वर्ष के लिये पट्टे (lease) पर देने के लिए बाध्य होना पड़ा। इस इकरारनामे के तहत वायसराए को (Indus) नदी के सारे दाएँ क्षेत्रीय इलाके समेत गिलगित सूबे की वज़ारत पर पूरे सिविल और फौजी अधिकार प्राप्त हो गये। महाराजा ब्रिटिश सरकार के दबाव के आगे कुछ करने में असमर्थ थे। इस तरह महाराजा के अधिकार–क्षेत्र में होने के बावजूद गिलगित व आस पास के दर्दिस्तान के इलाके पर 1935 से 1947 तक ब्रिटिश सरकार का सीधा शासन रहा। सरकारी भवनों पर महाराजा के झण्डे व गिलगित में कुछ अधिकारियों की नियुक्ती को छोड़ उनका अधिकार–क्षेत्र केवल खानों (mines) का लाइसेन्स देने तक ही सीमित था। पूरा बलटिस्तान व दर्दिस्तान (Indus) नदी के बाईं ओर के सारे क्षेत्र पर महाराजा का सीधा आधिपत्य था। 1947 में भारत की स्वतन्त्रता की घोषणा के साथ ही ब्रिटिश सरकार 'गिलगित एजेन्सी' महाराजा को वापस करने के लिए बाध्य हुई।

ब्रिटिश सरकार ने भारत को छोड़ने से पहले हुन्ज़ा को मिलाकर 'गिलगित एजेन्सी' के सारे क्षेत्र के प्रशासन को 1 अगस्त 1947 से जम्मू कश्मीर राज्य के हवाले करने का निर्णय लिया; जिसके फलस्वरूप ब्रि. घनसारा सिंह को महाराजा ने 19 जुलाई 1947 में इन क्षेत्रों का गवर्नर नियुक्त किया। वह 30 जुलाई को राज्य सेना के प्रमुख जनरल स्काट के साथ गिलगित पहुँचे। मेजर ब्राउन व गिलगित स्काउटस के कमांडेंट सूबेदार मेजर बबर खान और अन्य सैनिक अधिकारियों के साथ भेंट के दौरान उन्होंने गवर्नर और राज्य सेना प्रमुख को स्काउटस के सहयोग का आश्वासन दिया बशर्ते कि उनकी सेवा संबन्धी समस्याओं

व सुविधाओं का निवारण किया जाए।

जब ब्रि. घनसारा सिंह ने राजनैतिक प्रतिनिधि ले.कर्नल बीकन से 1 अगस्त 1947 के दिन कार्यभार संभाला तो वहाँ का पूरा काम काज ठप हो चुका था, क्योंकि सारे ब्रिटिश अधिकारियों ने पाकिस्तान को समर्थन देने का निर्णय ले लिया था और राज्य सरकार की ओर से उनके बदले में कोई नियुक्ति नहीं की गई। गिलगित के सिविल कर्मचारियों ने भी अपनी सेवाओं में सुधार व वेतन में वृद्धि होने तक काम काज करना बंद कर दिया। इसके ऊपर और कठिनाई तब हुई जब सरकारी भंडार की सभी वस्तुएँ वितरण कर दी गईं और चीनी व कपड़े के सभी स्टाक समाप्त कर दिए गये और स्टोर में चीनी का एक औंस व एक गज़ कपड़ा भी न रहा। जनरल स्काट 2 अगस्त 1947 के दिन शीघ्र ही सहायता भेजने का आश्वासन दे कर श्रीनगर वापस आ गये।

अगले तीन माह तक गवर्नर बड़ी ही कठिन परिस्थितियों में बिना विशेष सुरक्षा के रहे। वह श्रीनगर में महाराजा के प्रधानमंत्री एवं विदेश मंत्री को पत्रों व तारों (Telegrams) के माध्यम से गिलगित व आसपास के क्षेत्रों के हालात की लगातार सूचना भेजते रहे। परन्तु दरबार की अन्दरूनी कलह के कारण महाराजा का ध्यान इस दूरस्थ क्षेत्र में अपनी पकड़ बनाए रखने हेतु नहीं लाया गया और न ही कोई ठोस कदम उठाये गये। और तो और जनरल स्काट के द्वारा इस क्षेत्र की ओर महाराजा का ध्यान आकृष्ट करने के प्रयत्न भी निष्फल हुए। ऐसा लगता है कि श्रीनगर एवं पुंछ की समस्याओं व अंतर्कलह में महाराजा इतने उलझे हुए थे कि 'गिलगित एजेन्सी' जैसे दूरस्थ इलाके की ओर ध्यान नहीं दे सके। सैनिक दृष्टि से भी 'गिलगित एजेन्सी' पर महाराजा के आधिपत्य को सुनिश्चित करने हेतु विशेष प्रयत्न नहीं किये गये। गिलगित से 34 मील पहले बुंजी के स्थान पर कैप्टन दुर्गा सिंह के नेतृत्व में जम्मू कश्मीर लाइट इंफेंट्री की 5वीं बटालियन की एक कम्पनी को बदल कर 6वीं बटालियन की दो कंपनियों को, जिसमें सिक्ख और मुस्लिम सैनिक शामिल थे, ले.कर्नल अब्दुल मज़ीद खान के नेतृत्व में भेजा गया। गिलगित में मेजर ब्राउन 500 गिलगित स्काउटस का नेतृत्व कर रहे थे, जिन्होंने कैप्टन मैथिसन के साथ गवर्नर को सहयोग देने का

आश्वसन दिया था। कश्मीर की फौज के दो दूसरे मुस्लिम अधिकारियों को उनके नीचे काम करने के लिए भेजा गया। 6वीं बटालियन के कुछ मुस्लिम अधिकारियों ने गिलगित स्काउटस के मुस्लिम आफिसरों व जे. सी.ओज. के साथ गिलगित में पाकिस्तान की हकूमत कायम करने हेतु सम्पर्क साधा। राज्य पर पाक के हमले के उपरान्त महाराजा ने भारत के साथ विलय किया। गिलगित में यह अफवाह फैली कि पाक का श्रीनगर पर कब्जा हो गया है। जिस कारण 1 नवम्बर 1947 को प्रातः ही गवर्नर के घर को करीब 100 सैनिकों ने घेर कर और उन्हें आत्म समर्पण को कहा गया। गवर्नर ने प्रकट रूप से गैर मुस्लिम नागरिकों की सुरक्षा को लेकर आत्म समर्पण कर दिया। ब्रि. घनसारा सिंह के आत्म समर्पण के कारण बुंजी में स्थित 6वीं लाइट इन्फेंट्री के सैनिकों ने एक दूसरे को मारना शुरू कर दिया। सिक्ख सैनिक या तो मारे गये या फिर पहाड़ों की ओर जान बचाने हेतु भाग गये।

गवर्नर की गिरफ्तारी के उपरान्त एक अंतरिम (People's Republic of Gilgit and Baltistan) सरकार का गठन हुआ। जिसका नेतृत्व एक स्थानीय नागरिक रयाज़ खान ने किया। इसमें मेजर ब्राउन, महाराजा की फौज के कैप्टन एहसान अली व कैप्टन हसन और गिलगित स्काउटस के कैप्टन सैइद, ले. हैदर, सूबेदार मेजर बबर खान शामिल हुए। मेजर ब्राउन ने गिलगित स्काउटस लाइनस में 4 नवम्बर 1947 को पाकिस्तान का झण्डा लहरा दिया और तख्ता पलटने की सूचना पेशावर को भेज दी। NWFP के नये गवर्नर सर जार्ज कनिनगाहम ने उसे हालात पर काबू पाने की हिदायत दी। इसके बाद हुन्ज़ा व नगर के शासकों ने (जो अभी तक कश्मीर के महाराजा के पराधीन थे) भी पाकिस्तान के साथ विलय करने का निर्णय लिया। ब्रि. घनसारा सिंह को 14 मास उपरान्त पाक की कैद से सुचेत गढ़ में 15 जनवरी 1949 के दिन रिहा किया गया।

गिलगित स्काउटस और इसके कमांडर मेजर ब्राउन की कार्यवाही को भिन्न–भिन्न सूत्रों द्वारा बहुत बढ़ा–चढ़ा कर बताया गया। पाकिस्तान ने अपनी सफाई के लिए यह बताने की चेष्टा की कि सारा विद्रोह स्थानीय लोगों एवं गिलगित स्काउटस द्वारा संचालित था। उनके

अनुसार मेजर ब्राउन के सैनिक स्थानीय होने के कारण पाक में शामिल होना चाहते थे। अतः उसे उनकी मंशा के अनुसार कार्य करने पर बाधित होना पड़ा। परन्तु भारत के सूत्रों के अनुसार मेजर ब्राउन ब्रिटिश सरकार के इशारे पर कार्य कर रहे थे। बाद में इस इलाके को पाक में शामिल करने का श्रेय मेजर ब्राउन ने अपने ऊपर लिया और उसे इसके लिए मरणोपरान्त इनाम (Star of Pakistan Award) भी प्रदान किया गया। परन्तु स्वतंत्र सूत्रों के अनुसार मेजर ब्राउन ने विद्रोहियों का साथ आखिर में तब दिया जब उसके पास कोई विकल्प न बचा था। ब्राउन और मैथिसन ने राज्य की सेना को सहयोग का आश्वासन दिया था और वह गवर्नर के प्रति उत्तरदायी थे। मेजर ब्राउन प्रतिदिन हालात की सूचना गवर्नर को भेजते रहे और उसने विद्रोह को दबाने के लिए कदम भी उठाए। उसने गैर मुस्लिम नागरिकों को बचाने के भी प्रयास किये। विद्रोह के आरम्भ में उसे दो बार विद्रोहियों द्वारा गिरफ्तार भी किया गया। परन्तु बाद में उसने न केवल पुनः अपनी शक्ति (Authority) स्थापित की बल्कि इस इलाके को पाक में मिलाने का श्रेय भी प्राप्त किया।

गिलगित स्काउटस व वहाँ के स्थानीय लोगों में पंजाब की भांति हिन्दू–मुस्लिम दंगे नहीं हुए। शायद यही कारण था कि गवर्नर ने गिलगित की सुरक्षा के लिए राज्य की 6वीं बटालियन के मुस्लिम सैनिकों के स्थान पर गिलगित स्काउटस को चुना। गवर्नर को भी अपनी मांगें देते हुए उन्होंने केवल अपनी सेवाओं में सुधार व वेतन वृद्धि की मांग रखी। यदि उन्होंने तीन मास में विद्रोह करने का सोचा होता तो वह वेतन संबंधी लंबे समय की मांगें न रखते।

दर्दिस्तान पर कब्जे के उपरान्त कैप्टन एहसान अली के नेतृत्व में छठी कश्मीर लाइट इनफेन्ट्री, गिलगित स्काउटस व छितराल के 1200 सैनिकों ने बलटिस्तान की ओर कूच किया। कर्नल शेर जंग थापा के नेतृत्व में महाराजा के सैनिकों ने सकर्दू को छः मास तक शत्रु के आक्रमणों से बचाए रखा जब कि इस सारी अवधि में वह भारतीय सुरक्षा/सहायता से कटे हुए थे। विद्रोहियों ने पाक सेना की सहायता से मई 1948 को जोज़िला दर्रे पर कब्जा कर लिया और द्रास, करगिल की ओर घुसपैठ करने में सफल हुए जिस कारण लेह पर खतरा मंडराने

लगा। भारतीय फौज को बाद में लेह की सुरक्षा हेतु जोज़ीला से शत्रुओं को खदेड़ने की खातिर टैंकों का इस्तेमाल करना पड़ा। कर्नल शेरजंग थापा व उसके सैनिकों द्वारा शत्रुओं के साथ कड़े मुकाबले के बावजूद भारतीय सेना सकर्दू की सुरक्षा नहीं कर सकी। भारतीय सेना द्वारा गोरखा सैनिकों की दो पलटनों को सकर्दू भेजने के प्रयत्नों को कबाइलियों व पाक सेना द्वारा रास्ते में घात लगा कर हमला कर के निष्फल कर दिया गया। भारतीय हवाई सेना भी सकर्दू को सुरक्षा पहुँचाने में असमर्थ रही। हालांकि भारतीय हवाई जहाजों ने वहाँ कुछ सहायता सामग्री फेंकी परन्तु वह वहाँ पर घिरे हुए सैनिकों व गैर मुस्लिम नागरिकों (जो सैनिक छावनी में शरण लिए हुए थे) के लिए अपर्याप्त थी। नतीजन 14 अगस्त 1948 को सकर्दू में कर्नल शेर जंग थापा के नेतृत्व में सैनिक टुकड़ी ने आत्म समर्पण कर दिया और इस तरह बलटिस्तान व इसके आस पास के क्षेत्र पाकिस्तान के कब्जे में चले गये।

बड़े दुःख का विषय है कि 27 अक्तूबर 1947 को भारतीय सैनिकों ने श्रीनगर हवाई अड्डे पर कदम रखे परन्तु अगस्त 1948 तक सकर्दू में कोई सहायता न पहुँचने के कारण कर्नल शेर जंग थापा जैसे वीर सैनिकों को अपना अमूल्य बलिदान देना पड़ा जो बाहरी सहायता के बिना छः मास तक शत्रुओं से इस क्षेत्र की सुरक्षा की खातिर जूझते रहे, परन्तु अन्त में हमारे सियासी नेताओं की अदूरदर्शिता व कुचाल नीतियों के कारण शहीद होना पड़ा।

1 जनवरी 1949 को जंगबंदी का ऐलान हुआ परन्तु नेहरू एवं शेख अब्दुल्ला की मिलीभगत से ऐतिहासिक व सामरिक दृष्टि से इस महत्वपूर्ण इलाके को बड़ी सरलता से पाकिस्तान के हाथों जाने दिया गया। यदि शेख अब्दुल्ला व पंडित नेहरू ने इस मसले को संजीदगी से लिया होता तो कोई कारण नहीं था कि 14 मास के अंतराल के बावजूद इस क्षेत्र पर हमारा पुनः कब्जा न हो सकता था। कारण स्पष्ट था कि इस क्षेत्र में कश्मीरी नेताओं की मान्यता न होने के कारण इसको पाक कब्जे से मुक्त करवाने के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठाए गये, जिस कारण राज्य के इस बड़े भाग को शत्रु के कब्जे में जाने दिया गया।

पंडित प्रेम नाथ डोगरा

-एक महान राष्ट्र भक्त

मानव जन्म लेता है, चला जाता है। बहुत कम लोग ऐसे होते हैं जो अपने चिह्न पीछे छोड़ जाते हैं और जिनकी याद देर तक बनी रहती है। आज भी उनकी सोच तथा सिद्धांत एक मार्गदर्शक का काम करते हैं। ऐसे ही एक महान् व्यक्तित्व पंडित प्रेम नाथ डोगरा थे, जिनके जीवन में ही नहीं बल्कि उनके संसार से चले जाने के बाद भी उनकी सोच को आगे बढ़ाने का संकल्प बार–बार दोहराया जाता है।

पंडित प्रेम नाथ जी का जन्म 24 अक्तूबर 1884 को एक ब्राह्मण परिवार में समैलपुर ग्राम में हुआ। स्कूली शिक्षा के उपरान्त इन्होंने, लाहौर से स्नातक की डिग्री प्राप्त की। पढ़ाई के साथ यह खेलों में बड़ी रूचि रखते थे और इस क्षेत्र में कई इनाम प्राप्त किये। राज्य सरकार में तहसीलदार के पद से अपना कैरियर आरम्भ कर वज़ीर वज़ारत के पद तक काम किया। वजीर वजारत मुज़फ्फ़राबाद के पद पर रहते हुए इन्होंने अपने कौशल का परिचय दिया परन्तु कश्मीर घाटी में मुस्लिम आंदोलन के दौरान इन पर स्थिति को अच्छी प्रकार से निपटने में असफल रहने के दोषारोपण तथा कुछ स्वार्थी तत्वों के षडयंत्र के कारण इन्हें समय से पहले ही राज्य की सेवाओं से मुक्त होना पड़ा। यह इनके लिए वरदान सिद्ध हुआ क्योंकि अब इन्हें लोगों से सम्पर्क करने व उनकी समस्याओं को जानने के लिए पर्याप्त समय मिल गया। सामाजिक क्षेत्र में भी पंडित जी का योगदान अत्यन्त सराहनीय रहा। इन्होंने हरिजनों के उद्धार के लिए हरिजन सेवा मंडल की स्थापना की। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण मुखिया मंडल के भी संस्थापक पंडित जी ही थे जिसका उद्देश्य ब्राह्मण समाज से कुरीतियों को दूर करना था।

डोगरा सदर सभा में भी इनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही। पंडित जी जम्मू नगर पालिका के सदस्य भी रहे और दस वर्ष तक इसके उपप्रधान के पद पर रहे। जम्मू के गणमान्य व्यक्तियों में पंडित जी अग्रिम पंक्ति में गिने जाते थे जिस कारण प्रजा सभा के 1945 वाले चुनाव में यह विजयी रहे।

पंडित जी साम्प्रदायिक आधार पर किसी भी बंटवारे के विरुद्ध थे। उनका कहना था कि साम्प्रदायिक आधार पर लकीरें खींचना मानवता के साथ एक बड़ा अन्याय है। इसके परिणाम अत्यंत ही गंभीर होंगे। जिन लोगों ने देश का बंटवारा कराया उन्होंने बड़ा अन्याय किया। लाखों लोगों को जीवन से हाथ धोना पड़ा और करोड़ों को विस्थापित होने के साथ ही तबाही और बर्बादी का मुँह देखना पड़ा। पंडित डोगरा का यह भी मत था कि यदि धर्म को किसी देश का आधार मान लिया जाये तो सारे विश्व के मुसलमानों के लिए एक अलग देश होना चाहिए। इसी प्रकार ईसाइयों, बौद्धों तथा अन्य धर्म के अनुयायियों के अपने ही अलग–अलग देश होने चाहिए, जो कभी नहीं हो सकता। भारत यदि इस दृष्टिकोण को स्वीकारता है तो इस धरती पर तो कई समुदाय के लोग रहते हैं जिनके ईश्वर को मानने के लिए भिन्न–भिन्न तरीके हैं अतः इस नियम के मानने से भारत के अस्तित्व का प्रश्न ही नहीं रहता।

जम्मू–कश्मीर के संबंध में पंडित जी का कहना था कि कश्मीर भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का प्रतीक रहा है और फिर महाराजा हरि सिंह ने देश के अन्य सैंकड़ों राजाओं और नवाबों की भाँति ही भारत के साथ विलय–पत्र पर हस्ताक्षर किये जिसका अनुमोदन अन्य के अतिरिक्त स्वयं नेशनल कांफ्रेंस तथा अन्य नेताओं ने किया था। अतः इसे किसी भी रूप से अलग रखना धर्मनिरपेक्ष तथा लोकतांत्रिक मूल्यों के विरुद्ध होगा। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की देख–रेख में पाक अधिकृत कश्मीर व पश्चिमी पाकिस्तान से आये विस्थापितों के लिए सहायता शिविरों की

स्थापना एवं सहायता में पंडित जी का अमूल्य योगदान सदा याद किया जाएगा।

पंडित प्रेम नाथ डोगरा ने जम्मू–कश्मीर को भारत से जोड़ने और अलगाववाद की दीवारों को समाप्त करने के लिए राष्ट्रीय सोच के साथ एक क्षेत्रीय संगठन प्रजा परिषद् को एक सुदृढ़ शक्ति के रूप में संगठित किया। स्वतंत्रता के उपरान्त राज्य प्रशासन की कुनीतियों के विरुद्ध जम्मू में 15 जनवरी 1952 से 6 अप्रैल 1952 तक चले सर्वप्रथम छात्र आंदोलन के दौरान पंडित प्रेम नाथ डोगरा व इनके कई साथियों को गिरफ्तार कर भयंकर ठण्ड में श्रीनगर जेल में डाला गया।

प्रजा परिषद् के नेताओं को गिरफ्तार करने और उन पर मुकदमा चलाने के लिए राज्य सरकार ने कुख्यात और जन–विरोधी कानूनों का सहारा लिया। परन्तु अन्त में छात्रों की दृढ़ता व जनता के भरपूर समर्थन के आगे सरकार को झुकना पड़ा। छात्रों पर लगाया गया जुर्माना वापस लिया गया और महाविद्यालय से उनका निष्कासन भी रद्द कर दिया गया। 40 दिन की भूख हड़ताल सफलतापूर्ण समाप्त हुई और सरकार ने उनकी सभी मागें स्वीकार कीं। परिषद् के अध्यक्ष प्रेमनाथ डोगरा को उनके साथियों समेत कारागार से रिहा कर दिया गया। राज्य सरकार ने पंडित जी पर नेशनल कांफ्रेंस में शामिल होने का दबाव बनाया, जिसके लिए उन्हें कैबिनट मंत्री बनाने तक का प्रलोभन भी दिया। परन्तु पंडित जी ने अपनी ज़मीर को बेचने और सरकारी प्रलोभनों के आगे झुकने से इंकार कर दिया।

पंडित प्रेमनाथ डोगरा द्वारा राज्य का भारत के साथ पूर्ण अधिमिलन व राजनैतिक एकीकरण के प्रयास को इतिहास में स्वर्ण अक्षरों मे लिखा जायेगा। उन्होंने देशव्यापी जागरूकता अभियान के साथ ही महान् संघर्ष किया, भारी बलिदान दिये, हज़ारों लोगों ने प्रशासन द्वारा अमानवीय अत्याचारों को निडरता से सहन किया। 15 युवकों के बलिदानों के अतिरिक्त इसी आंदोलन में देश के महान् नेता

डा. श्यामा प्रसाद मुखर्जी का बलिदान हुआ। नारा और दृष्टिकोण स्पष्ट था– एक देश में दो विधान, दो प्रधान, दो निशान नहीं चलेंगे।

पं. प्रेम नाथ डोगरा द्वारा राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद को 19 जून 1952 को सौंपे गये ज्ञापन में राज्य की स्थिति का सही ढंग से आकलन प्रस्तुत किया गया। इस ज्ञापन में राज्य की विभिन्न समस्याओं पर पंडित जी ने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया, जिनके कुछ महत्वपूर्ण अंश इस प्रकार हैं :–

1. जम्मू के लोगों की नागरिक स्वतंत्रता, उनकी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और सरकारी नीतियाँ जिनमें से खास तौर पर भारत के साथ राज्य के संबंधों से जुड़ी नीतियों के प्रति जनता में असंतोष।

2. शिक्षा के क्षेत्र में राज्य में उर्दू को राज्य की भाषा देने व हिन्दी को उपेक्षित किये जाने का विरोध।

3. जम्मू प्रांत की क्षेत्रीय सीमा में फेरबदल कर प्रांत को हिन्दू और मुस्लमान इलाकों में बाँटने का विरोध।

4. हज़ारों की तादाद में हिन्दू और सिक्ख शरणार्थियों को राज्य में बसाने के स्थान पर इन्हें जबरदस्ती बीकानेर और भोपाल जैसे दूर इलाकों में भेजने का विरोध।

6. राज्य की नीतियों के कारण जम्मू और लद्दाख के लोगों की आर्थिक दशा अत्यन्त दयनीय होना व उन पर लगाये गये कर को दो से पाँच गुणा बढ़ाने का विरोध।

अंत में उन्होंने विचार प्रकट किया कि भारत की संतान होने के नाते वह अपनी मातृभूमि से अलग किये जाने के किसी भी प्रयास का विरोध करेंगे। हमें लाल झण्डा नहीं चाहिए तथा हम भारत के कानून का शासन चाहते हैं। हम सुप्रीम कोर्ट का संरक्षण व राष्ट्रीय ध्वज चाहते हैं।

जम्मू के लोगों का भविष्य इसी रास्ते पर चलकर सुरक्षित रहेगा। अपने पास मौजूद पूरे सामर्थ्य के साथ हम ऐसे किसी प्रयास को नाकाम कर देंगे, जो जम्मू के भारत में पूर्ण विलय का विरोध करता है।

भारत के संविधान के निर्माण के अवसर पर जब धारा 370 का प्रश्न उत्पन्न हुआ तो पंडित प्रेमनाथ डोगरा ने इसका कड़ा विरोध किया और देश के कई बड़े नेताओं से मिलकर इस विशेष धारा के दुष्प्रभावों से उन्हें सूचित किया। पंडित जी का कहना था कि यह एक ऐसा प्रबंध है जिसकी विचारधारा उस दो राष्ट्रीय सोच से मिलती है जिसके आधार पर देश का दुःखद बंटवारा हुआ। पंडित डोगरा के इस अभियान का यह परिणाम निकला कि अन्ततः नेहरु को यह जोर देकर कहना पड़ा कि धारा 370 एक अस्थायी प्रावधान है जो समय के साथ घिसते–घिसते घिस जायेगा।

पंडित प्रेम नाथ डोगरा, राज्य शासकों के भरसक प्रयत्न व दुष्प्रचारों के बावजूद, 1957, 1962 व 1967 के राज्य विधान सभा चुनावों में विजयी रहे। 1950 से 1964 तक वह प्रजा परिषद् के और बाद में इस के भारतीय जन संघ में विलय के उपरान्त भी 1967 तक इसके अध्यक्ष रहे। राज्य के देश के पूर्ण मिलन हेतु अपने दृढ़ विचारों के कारण इन्हें 9 मास तक कारागार में व्यतीत करने पड़े। इनके अथक देश–प्रेम व राज्य में योगदान के कारण वर्ष 1955–56 में पंडित जी को अखिल भारतीय जन संघ का अध्यक्ष बनाया गया। पंडित जी एक बड़े सुलझे हुए व्यक्तित्व व महान राष्ट्रवेता थे। इनके विरोधी बख्शी गुलाम मुहम्मद, गुलाम मुहम्मद सादिक व कई अन्य भी, इनकी इन्हीं विशेषताओं के कारण इनकी सराहना करते थे।

पंडित प्रेम नाथ डोगरा आज के राजनीतिज्ञों से भिन्न थे। वह एक कुशल खिलाड़ी, बड़े समाज सुधारक व उत्तम प्रशासक थे। राजनीतिक जीवन में उनके बराबर शायद ही कोई होगा। कई सरकारी पदों पर बने रहने और एक लम्बे समय तक पहले प्रजा सभा और फिर 15 वर्षों तक

विधान सभा में विपक्ष के नेता रहने के पश्चात भी उन्होंने कोई धन दौलत एकत्र नहीं की। उनकी निष्काम जन तथा देश सेवा की धारणा का अनुमान तो इसी बात से लगाया जा सकता है कि वह अपनी छोटी सी आय का एक भाग संगठन के कार्यों पर ही लगा देते थे और उनका घर सामाजिक गतिविधियों का सदैव केन्द्र बना रहता। पहले प्रजा परिषद, फिर भारतीय जनसंघ और अब भाजपा का प्रदेश मुख्यालय उसी भवन में है।

पंडित प्रेमनाथ डोगरा जीवन पर्यंत कई सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध आंदोलित रहे, जिनमें छुआछूत का अंत, शराब, मादक पदार्थों का सेवन तथा इस प्रकार की अन्य सामाजिक बुराइयाँ उनके संघर्ष का सदा अंग रहीं। श्री प्रेम नाथ डोगरा डुग्गर प्रदेश के ऐसे सच्चे सपूत थे जिनके ऊपर यहाँ के प्रत्येक निवासी को सदा गर्व रहेगा। अन्त में, 30 मार्च 1972 को इनकी महान् आत्मा ब्रह्मलीन हो गयी और अपने पीछे एक अमर व यादगार इतिहास छोड़ गई।

श्री तिलक राज शर्मा

तहसील नौशहरा के राजल गाँव में श्री तिलक राज जी का जन्म स्व. पंडित अमरनाथ शर्मा जी के घर 29 अप्रैल 1932 को हुआ। अल्प आयु में ही इनको कई मुसीबतों से जूझना पड़ा। मात्र 12 वर्ष की आयु में वह मातृ–स्नेह से वंचित हुए। भारत–पाक विभाजन के समय अपने परिवार से बिछड़ कर लगभग एक वर्ष तक पाकिस्तान में क्षण–क्षण मौत के साथ जूझते रहे।

छोटी आयु में विभिन्न प्रकार की पुस्तकों के अध्ययन से उनमें आध्यात्मिक ज्ञान की विशेष वृद्धि हुई। आध्यात्मिक चर्चा करते समय ऐसा आभास होता था मानों कोई उच्च कोटि के योगी व्याख्यान दे रहे हों। उनके मुख से आध्यात्मिक चर्चा सुनकर श्रोतागण स्तब्ध रह जाते। ऐसा लगता था कि माँ सरस्वती इनकी जिह्वा पर विराजमान है। इसी प्रकार राजनैतिक मंच पर भाषण द्वारा श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देते और जब किसी शोक सभा में कुछ शब्द कहते तो लोगों की पलकें भीग जातीं। उन्हें छः भाषाओं में दक्षता प्राप्त थी।

अपनी आरम्भिक शिक्षा नौशहरा–राजौरी में पूरी करने के बाद उन्होंने सन् 1949 में जम्मू कालेज में प्रवेश लिया। वह मेधावी छात्र होने के साथ–साथ एक उत्कृष्ट कवि व अच्छे गायक भी रहे। देश प्यार उनके अन्दर कूट–कूट कर भरा था इस बात का उदाहरण उन्होंने 19 वर्ष की आयु में ही दे दिया था जब जम्मू–कश्मीर राज्य के तत्कालीन 'प्रधानमंत्री' ने एक कार्यक्रम के दौरान कालेज परिसर में नेशनल कांफ्रेस का झंडा लहराया। जिस पर श्री तिलक जी ने स्टुडेंट नेशनल ऐसोसिएशन के बैनर तले अपने अन्य साथियों के साथ आंदोलन की

शुरुआत की। इनकी माँग थी कि जबकि जम्मू–कश्मीर राज्य का विलय भारत में हो चुका है, यहाँ पर राष्ट्रीय ध्वज तिरंगा ही लहराया जाना चाहिए। इस आंदोलन में श्री शर्मा जी ने 42 दिनों तक सत्याग्रह किया व अनशन पर बैठे रहे। हालात बिगड़ते देख सरकार ने इन्हें जेल ले जा कर जबरन भूख हड़ताल खत्म करवाने का प्रयास किया परन्तु सफलता न मिलने पर इन्हें अर्द्धमृत अवस्था में जेल से बाहर फेंकवा दिया गया।

इसी आंदोलन से प्रेरित होकर सन् 1952–53 में एक विधान, एक निशान और एक प्रधान की माँग पर प्रजा परिषद् की ओर से एक जन आंदोलन का आह्वान हुआ। इस आंदोलन में श्री तिलक जी की अहम् भूमिका रही। सन् 1954 में भारत के पूर्व–दक्षिण क्षेत्र गोवा को पुर्तगालियों से आज़ाद करवाने के लिए आंदोलन चल रहा था। श्री तिलक राज शर्मा जी अपने 21 साथियों के साथ सत्याग्रह करने गोवा पहुंचे। वहाँ इन्हें अनेक यातनाएँ दी गईं। इन्हें समुद्र में फेंक दिया परन्तु किसी प्रकार बचने में सफल हुए। सन् 2002 और 2003 में गोवा की भाजपा सरकार ने 19 दिसम्बर को श्री शर्मा जी एवं अन्य सत्यग्रहियों को गोवा बुला कर सम्मानित किया। श्री तिलक राज शर्मा सहित सभी गोवा–मुक्ति–संग्राम के सत्याग्रहियों को 'गोवा स्वतंत्रता सेनानी' के अलंकार से सुशोभित किया गया।

श्री तिलक राज जी ने अपने जीवन काल में अनेक आंदोलनों में सक्रिय भाग लिया; फलस्वरूप कई बार जेल भी गये। एम.ए इंग्लिश, एम.ए हिन्दी, एल.एल.बी. होने के बावजूद कई बार राज्य सरकार की ओर से उच्च कोटि के लोभित करने वाले पदों के प्रस्ताव ठुकरा दिए क्योंकि शर्मा जी का प्रथम व अंतिम उद्देश्य केवल और केवल जन सेवा ही था। गरीबों, अनाथ बच्चों, वृद्ध आश्रम, गौशालाओं और गरीब लड़कियों के विवाह के लिए दान देना मानो उनके जीवन का अभिन्न अंग था। किसी के अर्थ संकट को देखकर वे अत्यन्त व्यथित हो जाते। विलक्षण से विलक्षण परिस्थितियों में भी समरस, मधुरभाषी व कार्यशील

रहना या अपने से छोटों को भी आदर देकर संबोधित करना उनका स्वभाव था।

1996 में बाबा अमरनाथ यात्रा के संस्थापक अध्यक्ष होने पर उन्होंने श्री अमरनाथ यात्रा की महिमा की ओर देशवासियों का ध्यान खींचा। सन् 2002 में जम्मू–कश्मीर नेशनलिस्ट फ्रंट की नींव रखी व उसके सभापति रहे। इस फ्रंट के माध्यम से जम्मू के साथ पिछले 60 वर्षों से हो रहे भेदभाव के विषय में लोगों में जागरूकता पैदा की। समय–समय पर राज्य सरकार द्वारा जम्मू के साथ भेदभाव की नीति को केन्द्र सरकार तक पहुँचाया। श्री शर्मा जी 18 वर्ष तक संघ के प्रचारक भी रहे।

श्री अमरनाथ यात्रा संघर्ष समिति द्वारा छेड़े गये आंदोलन में श्री शर्मा जी ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और समिति के प्रवक्ता के नाते समिति की कमान संभाली। राज्यपाल द्वारा बनाई गई छः सदस्यीय कमेटी से बातचीत करने के लिए जिस चार सदस्यीय कमेटी का गठन हुआ, श्री शर्मा जी ने उस कमेटी का नेतृत्व भी किया।

आंदोलन के आरम्भिक दिनों में ही उनका स्वास्थ्य गिरना शुरु हो गया था। जिस रोग के कारण उन्होंने अपने प्राण दिये, उसके संकेत आंदोलन के दिनों में ही मिलने लगे थे। परन्तु उन्होंने उपचार करवाने से साफ इन्कार कर दिया क्योंकि उनके अनुसार उस समय उनकी जम्मू को अधिक आवश्यकता थी। अन्त में 25 जनवरी 2009 को प्रातः 7.20 पर एक महान राजनैतिक, आध्यात्मिक व दार्शनिक व्यक्तित्व सदा के लिए पंचतत्व में विलीन हो गया।

जिन दुगर्म राहों पर श्री तिलक राज शर्मा जी सहजता से चले, राष्ट्र जीवन में सदैव ही पवित्र और ऊँची भावना से संघर्ष किया, अपनी अंतिम साँस तक समाज के लिये तिल–तिल कर जलते हुए अपने प्राणों की आहुति दी परन्तु समाज से किसी प्रकार की अपेक्षा नहीं की। उनके

अविस्मरणीय सामाजिक योगदान तथा उत्कट देश भक्ति के लिए डुग्गर प्रदेश सदा ही उनका ऋणी रहेगा।
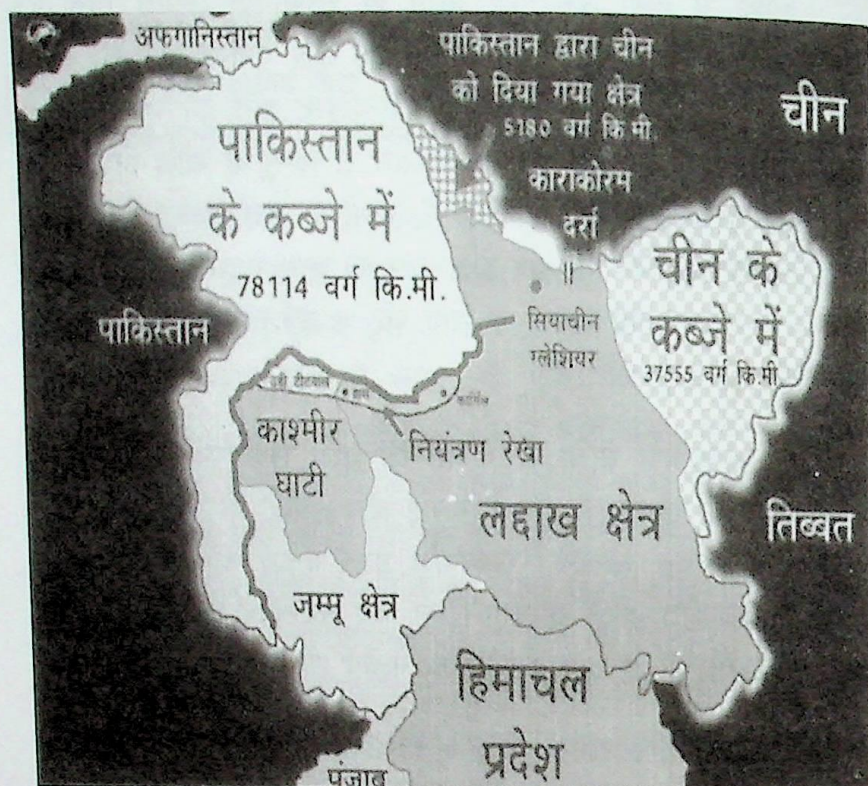
Total Area of J&K as on 15th Aug. 1947	:	= 2,22,236 Sq. Kms.
Area under illegal occupation of Pakistan	:	= 78114 Sq. Kms.
Area under illegal occupation of China	:	= 37,555 Sq. Kms.
Area illegally handed over to China by Pakistan	:	= 5180 Sq. Kms.

सुनील उपाध्याय
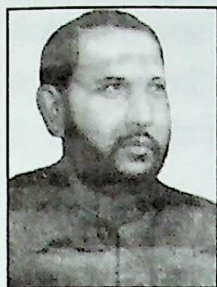
सुनील जी का जन्म, जम्मू कश्मीर के कठुआ जिले में माता श्रीमती पद्मावती एवं पिता श्री विद्या प्रकाश जी के घर 15 मार्च 1954 को हुआ। बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि के मालिक सुनील जी में नेतृत्व की अपार क्षमता थी। बाल्यकाल में ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सम्पर्क में आने से सुनील जी के इस गुण में परिपक्वता एवं दृढ़ निश्चितता का समावेश हुआ। वर्ष 1975 में जब देश पर आपातकाल थोपा गया तब सुनील जी दसवीं कक्षा के छात्र थे। आपातकाल के विरुद्ध छात्रों एवं युवाओं में अत्यन्त गुस्सा था और सुनील जी भी ऐसे युवाओं की पंक्ति में अग्रणीय थे। छोटी सी आयु में ही इस काले कानून के विरुद्ध सुनील उपाध्याय जी ने सत्याग्रह करने का निर्णय लिया। घर में बड़े भाई के विवाह की तैयारियाँ चल रही थीं। इस लिए घर के सदस्य उनके इस निर्णय के विरुद्ध थे किन्तु धुन के पक्के सुनील जी ने सत्याग्रह आरम्भ कर दिया और उन्हें जेल जाना पड़ा। आपातकाल के इस दौर में वे 9 मास जेल में बंद रहे।

अपने अद्‌भुत नेतृत्व का परिचय उन्होंने एक बार पुनः तब दिया जब वह बी.ए. प्रथम वर्ष के छात्र थे। बिरला समूह की चिनार टैक्सटाईलस की कठुआ स्थित फैक्ट्री में मज़दूरों की हड़ताल हो गई तो मिल मालिकों ने मज़दूरों का दमन प्रारम्भ कर दिया जिस से हड़ताल उखड़ने लगी। सुनील जी को जब उद्योग मालिकों द्वारा मज़दूरों पर की जा रही ज़्यादतियों का पता चला तो वे हड़ताल में कूद पड़े और आंदोलन का नेतृत्व किया। मिल प्रबंधकों को उनके सामने झुकना पड़ा और मज़दूरों की मागें माननी पड़ीं। सुनील जी की नेतृत्व क्षमता का यह अनूठा उदाहरण है।

आपातकाल की समाप्ति के पश्चात् जब छात्र आंदोलन चर्मोत्कर्ष पर था और सुनील जी जम्मू में विद्यार्थी परिषद् का कार्य देख रहे थे तो उन्होंने कई छात्र आंदोलनों का सफल नेतृत्व किया। जम्मू में रहते उन्हें अपने पड़ोसी राज्य हिमाचल प्रदेश में कम्यूनिस्टों द्वारा छात्र राजनीति में जड़ें फैलाने की सदैव चिंता रहती थी। उन दिनों हिमाचल प्रांत में विद्यार्थी परिषद् का कार्य न के बराबर था और सुनील जी इस बात से व्याकुल हो उठते थे।

एक दिन अपनी इस बेचैनी को लेकर सुनील जी तात्कालिक संगठन मंत्री आलोक कुमार जी से मिले और परिषद् कार्य विस्तार हेतु हिमाचल जाने की इच्छा जाहिर की। आलोक जी की हामी के पश्चात् अगले दिन घरवालों को बिना बताये और इस बात की ज़रा भी चिन्ता किये बिना कि बी.ए. द्वितीय वर्ष में माईग्रेशन कैसे होगा, शिमला (हि.प्र) के लिए रवाना हो गये। यह 1979–80 की बात है। तब से सुनील जी के अथाह परिश्रम एवं लग्न से विद्यार्थी परिषद् के कार्यों को हिमाचल में नई दिशा एवं शक्ति का संचार प्राप्त हुआ। 1980–81 में हि. प्र. विश्वविद्यालय में MBA की प्रवेश परीक्षा में कम्यूनिस्टों ने विश्वविद्यालय प्रशासन के साथ मिल कर धाँधली की तो सुनील जी के दिशा निर्देश पर परिषद् के मुठ्ठी भर कार्यकर्ताओं ने जबरदस्त आंदोलन प्रारम्भ किया किन्तु जब सम्पूर्ण प्रशासन ने परिषद् को हलके से लिया और धाधंली के विरुद्ध आँखें मूंदे रहे तो उन्होंने कुछ अन्य कार्यकर्ताओं के साथ आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया।

सुनील जी का स्वास्थ्य निरन्तर गिर रहा था, किन्तु जब तक पूर्ण प्रवेश प्रक्रिया को निरस्त नहीं किया गया एवं नये सिरे से प्रवेश प्रक्रिया नहीं हुई तब तक आंदोलन चलता रहा और आठ दिनों के उपरान्त आंदोलन की सफलता के साथ अनशन की समाप्ति हुई। इसी वर्ष हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय में एक अन्य आंदोलन छात्रावास की समस्या को लेकर हुआ। विश्वविद्यालय का एवालॉज भवन जो रिक्त

पड़ा हुआ था और छात्र उसे छात्रावास में बदलने की मांग कर रहे थे, लेकिन विश्वविद्यालय प्रशासन ढुलमुल रवैया अपनाये हुये था। ऐसे में सुनील जी ने कुछ अन्य कार्यकर्ताओं को साथ लेकर एवलॉज के ताले तोड़ कर वहां पर बिस्तर लगा दिये। छात्रों के दबाव में, प्रशासन को उसे बाद में छात्रावास में बदलना पड़ा जिस का पूरा श्रेय सुनील जी के नेतृत्व में विद्यार्थी परिषद् को जाता है।

इन आंदोलनों से प्रदेश में विद्यार्थी परिषद् की छवि एक जुझारू छात्र संगठन के रूप में स्थापित हुई और 1982 में कई महाविद्यालयों में छात्र सघं चुनावों में साधनों की कमी के बावजूद जीत अर्जित की। अगले ही वर्ष 1983 में हि.प्र. विश्वविद्यालय में भी अध्यक्ष के पद पर जीत अर्जित की और अधिकांश महाविद्यालयों में भी विजय हासिल की। तब से अब तक विद्यार्थी परिषद् हिमाचल में लगातार अग्रणीय रही है।

सुनील जी एक कुशल संगठक थे और वे हर जीत का श्रेय अपने साथियों को देते थे। छात्र राजनीति में सुनील जी छात्र हितों को सर्वोपरि मानते थे और अपने संगठनात्मक एवं नेतृत्व कौशल से अन्य छात्र संगठनों को भी एक मंच पर लाने का सामर्थ्य रखते थे। विद्यार्थी परिषद् के कार्य के दृढ़ीकरण एवं विस्तार हेतु सुनील जी अपने आराम एवं स्वास्थ्य की परवाह न करते हुये लगातार प्रवास एवं कठोर परिश्रम से हिमाचल प्रांत में विद्यार्थी परिषद् को सशक्त बनाने हेतु कार्य करते रहे। अपनी इस जीवन शैली से उनके शारीरिक स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ने लगा। 1985 के पटना अधिवेशन के दौरान उनके मुंह से अचानक खून आ गया। डाक्टरी जांच में पता चला कि सुनील जी के फेफड़े खराब हो चुके थे। उन्हें दिल्ली के अस्पताल में दाखिल किया गया, फिर देख–रेख की दृष्टि से दिल्ली से मुम्बई लाया गया। मृत्यु के इतने निकट आकर भी उन्हें मृत्यु से भय नहीं हुआ। लगभग 8 मास तक जीवन–मृत्यु से संघर्ष करते हुए 12 नवम्बर 1985 को दिवाली के दिन प्रातः 4 बजे उनका जीवनदीप बुझ गया, पर हिमाचल प्रदेश में विद्यार्थी परिषद् के दीपक को वे सदा के लिए आलोकित कर गए।

विद्यार्थी परिषद्, हिमाचल प्रदेश के कार्यकर्ता सुनील जी की पुण्यतिथि (12 नवम्बर) को प्रदेश में विभिन्न स्थानों पर रक्तदान शिविरों का आयोजन कर उन्हें हर वर्ष अपनी श्रद्धांजली अर्पित करते हैं।

हे अविरल संगठक तुम्हें कोटी–कोटी नमन।

(स्व. सुनील उपाध्याय जी को पूर्णकालिक के रूप में हिमाचल प्रदेश जाने के समय जम्मू अभाविप के विदाई मिलन में–1979)

जम्मू के ऐतिहासिक आंदोलन

जम्मू का ऐतिहासिक छात्र आंदोलन
(जनवरी – अप्रैल 1952)

रियासत जम्मू–कश्मीर का भारत में विलय 26/27 अक्तूबर 1947 को हो चुका था। यह विलय ठीक वैसा ही हुआ था जैसा कि देश की अन्य रियासतों का हुआ था। जहाँ अन्य रियासतों की भारत में एकीकरण की प्रक्रिया लगभग पूरी हो चुकी थी, पर वर्ष 1952 के आने तक भी जम्मू–कश्मीर में यह प्रक्रिया धीमी ही नहीं बल्कि रुक–सी गई थी। चूँकि उस समय के प्रशासक यहाँ की जनता को लोकतांत्रिक अधिकार देने के लिये तैयार नहीं थे अतः वह एकीकरण की प्रक्रिया को बाधित करने में रुचि लेने लगे। वह राज्य के लिए अलग संविधान और अलग झंडा चाहने लगे। धारा 370 की आड़ में यहाँ अपनी मनमानी होने लगी। तत्कालीन राष्ट्रपति, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने भी इस धारा को असाधारण शक्ति माना था। यहाँ के मुखिया गलत रास्ते पर चल कर राज्य में एक प्रकार की तानाशाही लादने पर तुले हुए थे। इस कारण देश–भक्त जनता का सरकार से टकराव होना स्वाभाविक ही था। आश्चर्य की बात है कि राज्य के लोगों, विशेषकर जम्मू व लद्दाख के निवासियों को, स्वतंत्र भारत में भी अपने लोकतांत्रिक अधिकारों के लिए लड़ना ही नहीं पड़ रहा था, बल्कि कई अमानवीय यातनाएँ सहनी पड़ीं व बलिदान भी देने पड़े। वर्ष 1952 इस संघर्ष का साक्षी बना और इसका कारण बनी एक छोटी सी चिंगारी!

15 जनवरी 1952 को जम्मू के जी.जी.एम. साइंस कॉलेज (GGM Science College) में एक कार्यक्रम के दौरान प्रशासन ने अपने राजनैतिक दल नेशनल कांफ्रेस का झण्डा फहराने का निश्चय किया। सरकारी कार्यक्रम में किसी राजनैतिक पार्टी का ध्वज फहराने का कोई औचित्य नहीं था। चूंकि मार्चपास्ट करते हुए छात्रों को इस ध्वज को सलामी देनी थी, इस कारण कुछ छात्रों व अन्य लोगों ने इसका विरोध किया। पुलिस

ने बलपूर्वक विरोध करने वालों को समारोह से निकाल कर वहाँ नेशनल कांफ्रेस का झण्डा फहरा दिया। कुछ समय उपरान्त विरोधी छात्र सरकार व नेशनल कांफ्रेस के विरुद्ध नारे लगाते हुए वहाँ पहुँच गये। एस.एन.ए. (स्टूडेंट नेशनल एसोसिएशन), के तत्वाधान में जो यह विरोध प्रकट हो रहा था, उसके महासचिव समेत कुछ छात्रों को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया।

अनुशासनात्मक कार्यवाही करते हुए कॉलेज के प्रशासन ने छात्र एसोसिएशन के प्रधान वेद मित्र व महासचिव यश भसीन को महाविद्यालय से निष्कासित कर दिया परन्तु जब इस कार्यवाही का तीव्र विरोध हुआ तो प्रशासन ने निष्कासन के आदेश को तो वापस ले लिया परन्तु दोनों विद्यार्थी नेताओं को चार–चार सौ रुपया जुर्माना अवश्य कर दिया। छात्रों में कॉलेज प्रशासन के तानाशाही रवैये पर रोष पनप रहा था। राज्य सरकार वास्तव में जम्मू के राजनैतिक, सांस्कृतिक व सामाजिक अस्तित्व को समाप्त करने का षडयंत्र रच रही थी। सरकार के इस तानाशाही रवैये के विरुद्ध लोगों के अन्दर आक्रोश भड़क रहा था। 15 जनवरी की इस घटना से मानो सरकार ने यह अवसर प्रदान कर दिया। 28 जनवरी 1952 को छात्रों की एक बैठक में भूख हड़ताल प्रारम्भ करने का फैसला किया गया। यह भूख हड़ताल 40 दिनों तक चली।

इस भूख हड़ताल में प्रत्येक दिन दो नये छात्र बैठ जाते परन्तु पहले बैठे छात्रों की भूख हड़ताल भी जारी रहती। सर्वप्रथम तिलक राज शर्मा और विश्वपाल इस हड़ताल में बैठे। बाद में चमन लाल गुप्ता, वेद मित्र समेत 27 छात्रों ने इस 40 दिन की भूख हड़ताल में भाग लिया। पुलिस भूख हड़ताल पर बैठे छात्रों को कारागार में ले जा कर जबरदस्ती भोजन खिलाने का प्रयास करती परन्तु असफलता ही हाथ लगती।

29 जनवरी को महाविद्यालय में पूरी हड़ताल रही। कॉलेज प्रशासन छात्रों की जायज़ माँगें सुनने के स्थान पर उनके नाम महाविद्यालय से काटने लगा। एक ओर छात्र जुर्माना रद्द करने की माँग कर रहे थे,

दूसरी ओर प्रशासन का रवैया अधिक अड़ियल होता जा रहा था। 3 फरवरी को पुलिस ने विद्यालय परिसर से दस छात्रों को गिरफ्तार कर लिया। कुछ और छात्रों को हिंसक प्रदर्शन के आरोप में बंदी बना लिया गया। कॉलेज प्रशासन से इन सभी छात्रों के नाम काट कर परिसर में भारी पुलिस तैनात करवा दी।

छात्र एसोसिएशन ने इस पूरे घटनाक्रम को ले कर दो महत्वपूर्ण प्रश्न उठाए।

(क) क्या जम्मू–कश्मीर राज्य का अलग झण्डा होना चाहिए?

(ख) क्या सरकार महाविद्यालय के छात्रों को किसी राजनैतिक दल का झण्डा फहराने हेतु विवश कर सकती है?

छात्रों द्वारा महाविद्यालय में गड़बड़ी व हुड़दंग फैलाने की आशंका को देखते हुए सरकार ने कॉलेज के प्रिंसिपल के आग्रह को स्वीकार कर 8 फरवरी से महाविद्यालय अनिश्चित काल के लिये बंद कर दिया।

सरकार की अदूरदर्शिता व हठीलेपन के कारण छात्रों का यह विरोध पूरे जम्मू क्षेत्र में जन–आंदोलन का रूप धारण करने लगा। 6 फरवरी को नगर में कई स्थानों पर प्रदर्शन हुए जिन्हें देखते हुए सरकार ने सिनेमाघर बन्द करने के आदेश जारी कर दिए। छात्रों को अब व्यापक जन–समर्थन मिलने लगा था। छात्रों के प्रति सहानुभूति दर्शाते हुए बड़ी संख्या में लड़कियाँ भी इस आंदोलन में भाग लेने पहुँची। 8 फरवरी को छात्रों का यह हुजूम जब कॉलेज परिसर में पहुँचा तो उन्हें पता चला कि सरकार द्वारा महाविद्यालय बन्द कर दिया है। चूंकि महाविद्यालय के अधिकारी बात करने के लिये भी तैयार नहीं थे, छात्रों ने सचिवालय जा कर सरकार के प्रतिनिधियों से मिलने का निर्णय लिया और यह छात्र समूह एक प्रदर्शन में बदल गया।

रास्ते में अन्य विद्यालयों के छात्र व छात्राएँ भी इस प्रदर्शन में शामिल होने लगे, जिनकी संख्या अब 2000 से भी अधिक हो गई। इस

हुजूम को रोकने के लिये रास्ते में पुलिस ने पाँच बार लाठी चार्ज किया और तीन बार गोलियाँ चलाईं। लेकिन छात्रों का हुजूम रूका नहीं। वे सचिवालय तक पहुँच ही गये। सचिवालय के प्रतिनिधियों ने छात्रों से मिलने व उनकी बात सुनने के बजाए सचिवालय के दरवाजे बंद कर दिये। प्रदर्शनकारी अन्दर जाने की माँग कर रहे थे। पुलिस ने फिर लाठी चार्ज किया। छात्रों ने पुलिस पर पत्थर फेंकने शुरू कर दिये। पुलिस ने गोली चला दी। अब दोनों तरफ से जम कर लड़ाई हुई। पंजतीर्थी चौक में भी पुलिस और प्रदर्शनकारियों के बीच भिड़ंत हुई। शहर के रघुनाथ मंदिर बाजार में भी जुलूस निकाले गये। कुल मिलाकर आंदोलन व्यापक रूप ले रहा था। स्थिति को नियंत्रण से बाहर जाते देख प्रशासन ने सेना को बुला लिया। भारतीय सेना जो राज्य में पाकिस्तानी आक्रमणकारियों से निपटने के लिए बुलाई गई थी, राज्य सरकार उसे अब जम्मू के छात्रों से लड़ाना चाहती थी।

छात्र आंदोलन की आड़ में नेशनल कांफ्रेस सत्ताधारी दल की सरकार ने प्रजा परिषद् को दबाने, डराने व धमकाने का काम आरम्भ कर दिया। इस दल ने स्पष्ट रूप से इस आंदोलन के पीछे प्रजा परिषद् के हाथ होने का संकेत दिया और कहा कि परिषद् सरकार को चुनौती दे रही है और लोगों में भ्रम पैदा कर रही है। सरकार ने 8 फरवरी की आधी रात से जम्मू में 72 घण्टे के कर्फ्यू की घोषणा कर दी और प्रजा परिषद् के अध्यक्ष पंडित प्रेम नाथ डोगरा सहित कई सदस्य गिरफ्तार कर लिये गये। जहाँ एक तरफ प्रजा परिषद् ने इस आंदोलन में अपनी संलिप्तता के सभी सरकारी आरोपों का खण्डन किया, वहीं दूसरी ओर परिषद् ने सरकारी दमन और जम्मू के लोगों के साथ सरकार के व्यवहार को लेकर एक प्रतिनिधिमंडल दिल्ली भेजने का निर्णय लिया, ताकि भारत सरकार को सही स्थिति से अवगत करवाया जा सके। परिषद् के कुछ सदस्य इस हेतु दिल्ली भी पहुँच गये।

भारतीय जन संघ ने राज्य के इस घटनाक्रम पर व परिषद् के नेताओं की गिरफ्तारी पर अपनी चिंता प्रकट की। परिषद् ने इस पूरे

घटनाक्रम की निष्पक्ष जाँच की भी माँग रखी। हिन्दू महासभा के अखिल भारतीय नेतागण यहाँ की स्थिति के अध्ययन के लिए जम्मू आये। अनेक लोगों से भेंट करने के उपरान्त उन्होंने पूछा कि महाविद्यालय के अधिकारी आखिर नेशनल कांफ्रेस के झण्डे को सलामी देने के लिये किसी को कैसे बाध्य कर सकते हैं? उन्होंने प्रजा परिषद् के लोगों को तुरंत रिहा करने की भी राज्य सरकार से माँग की।

8 फरवरी से लगाया गया कर्फ्यू 21 फरवरी को उठा लिया गया परन्तु प्रजा परिषद् के कार्यकर्ताओं की धर पकड़ में ढिलाई नहीं आई। पंडित प्रेम नाथ डोगरा समेत उनके कई साथियों को जम्मू कारागार से निकालकर श्रीनगर की जेल में भेज दिया गया। इस आंदोलन का केन्द्र बिन्दु जी.जी.एम. सांइस (G.G.M. Science) कॉलेज को दस दिन बाद 18 फरवरी को खोल दिया गया। 9 फरवरी को सरकार ने दस छात्रों को रिहा किया परन्तु 17 फरवरी को उन्होंने एक बार फिर गिरफ्तारी दी। छात्रों का कहना था कि "15 जनवरी के कांड में जिन छात्रों को महाविद्यालय से निष्कासित किया गया, उनका निष्कासन रद्द किया जाए और आर्थिक दंड माफ किया जाए। उनका राजनीति से कुछ लेना–देना नहीं है।"

परन्तु सरकार के इस दमनकारी व्यवहार में कुछ कमी नहीं आई। 20 फरवरी को दो और छात्र गिरफ्तार किये गये जिन्हें मिलाकर बंदी छात्रों की संख्या 16 हो गई। पहले किये गये गिरफ्तार छात्रों पर दो–दो माह की कैद के अतिरिक्त 200–200 रुपये का जुर्माना किया गया। प्रजा परिषद् के उपाध्यक्ष व महासचिव को राज्य से निष्कासित कर दिया गया और उनके कार्यकर्त्ताओं की धर–पकड़ में ढिलाई नहीं आई। परिषद् ने अपनी बैठक में एक प्रस्ताव पास किया जिसमें कहा गया कि इस छात्र आंदोलन में परिषद् का कोई हाथ नहीं है। सरकार जान बूझ कर प्रजा परिषद् का नाम इसमें घसीट रही है। प्रस्ताव में सरकार से माँग की गई कि वह जम्मू के लोगों के वैधानिक अधिकारों एवं

आकांक्षाओं का सम्मान ही न करे बल्कि उनकी रक्षा भी करे। सरकार से यह भी आग्रह किया गया कि छात्रों की हड़ताल 27वें दिन में पहुँच गई है सरकार उन से बातचीत कर उनके प्राणों की रक्षा करे और जम्मू की घटनाओं की स्वतंत्र और निष्पक्ष जाँच करवाई जाए।

जम्मू की घटनाओं और वहाँ हो रहे दमन–चक्र की गूंज भारतीय संसद में भी पहुँची। संसद सदस्य प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना ने कहा कि भूख हड़ताल पर बैठे छात्रों को जेल में डाल देना तो अत्याचार की हद है। जम्मू में हिंदू समाज को प्रताड़ित किया जा रहा है। उन्हें डराया धमकाया जा रहा है। 70 साल के प्रेम नाथ डोगरा को बंदी बनाकर श्रीनगर की जेल में रखा हुआ है, जहाँ बर्फ पड़ी हुई है। डोगरा जम्मू के सर्वाधिक सम्मानित नेता हैं। एक अन्य सदस्य ने आश्चर्य प्रकट किया कि जो परिषद्, राज्य के भारत में पूर्ण अधिमिलन की माँग कर रही है, धारा 370 को हटाने की माँग कर रही है, उसे शत्रु पक्ष बताया जा रहा है।

जम्मू में छात्र आंदोलन का ताप सहना अब सरकार के लिए मुश्किल होता जा रहा था। अतः सरकार ने 9 मार्च 1952 को छात्रों पर लगाया गया जुर्माना वापस ले लिया और महाविद्यालय से छात्रों का निष्कासन भी रद्द कर दिया। इस प्रकार छात्रों की 40 दिन की भूख हड़ताल सफलतापूर्वक समाप्त हुई और सरकार ने उनकी सभी माँगें स्वीकार कीं। 4 अप्रैल, 1952 को केन्द्र में रियासती मंत्रालय के मंत्री एन. गोपालास्वामी आयंगर जम्मू पहुँचे। प्रत्यक्ष रूप में उनकी कार्यसूची में जम्मू आंदोलन नहीं था, लेकिन परदे के पीछे उन्होंने राज्य सरकार को प्रजा परिषद् के लोगों को तुरंत छोड़ने का दबाव बनाया जिसके फलस्वरूप 6 अप्रैल 1952 को परिषद् के अध्यक्ष प्रेमनाथ डोगरा समेत अन्य नेताओं को कारागार से रिहा कर दिया गया।

इस प्रकार जम्मू की धरती पर स्वतन्त्रता के बाद छात्रों का यह अभूतपूर्व आंदोलन 15 जनवरी 1952 से आरम्भ हो कर 6 अप्रैल 1952 को

सम्मानजनक तरीके से सम्पन्न हुआ। जम्मू के छात्रों ने सरकार को यह बता दिया कि उन पर कोई भी विचार विशेषकर राष्ट्रविरोधी विचारधारा को जबरदस्ती नहीं थोपा जा सकता। जम्मू का यह इतिहास रहा है कि इस धरती पर वीरों ने जन्म लिया है जो किसी प्रकार के अन्याय को सहन नहीं कर सकते। वर्तमान आंदोलन को तूल देने के पीछे शायद सरकार की यह मंशा रही होगी कि यहाँ के एक मात्र विपक्षी दल को इसमें घसीट कर उसे समाप्त कर दिया जाए। इस प्रकार इस के लिए उसने छात्र आंदोलन को एक ढाल बनाना चाहा। परन्तु इस कुचाल में राज्य के राजनेताओं व प्रशासन को असफलता ही हाथ लगी। तत्कालीन केन्द्र सरकार, जो राज्य सरकार के हर कदम की सराहना करती थी, को भी कुछ देर बाद अपने किये पर पश्चाताप करना पड़ा और राज्य के मुखिया को बन्दी बना कर जेल में भेजना पड़ा।

कुछ भी हो इस छात्र आंदोलन ने जम्मू निवासियों को अपनी मान, शान व अधिकारों के लिए संघर्ष करने हेतु एक नई राह दिखाई जो आगे चलकर एक मार्गदर्शक के रूप में सहायक बनी।
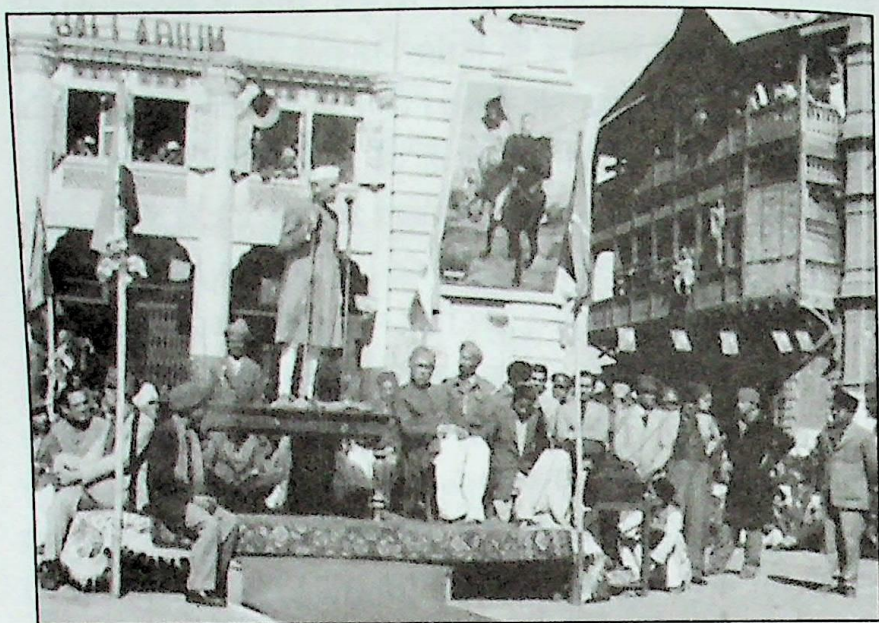
(लाल चौक श्रीनगर में पंडित नेहरू भाषण करते हुए)

(प्रजा परिषद् आंदोलनकारी 1952–53)

प्रजा परिषद् आंदोलन
(नवम्बर 1952 – जुलाई 1953)

जम्मू–कश्मीर राज्य के महाराजा हरि सिंह द्वारा 26 अक्तूबर 1947 को विलय–पत्र पर हस्ताक्षर करने के साथ ही भारत के साथ विधिवत् मिलन हो गया जिसे तत्कालीन गवर्नर जनरल ने अगले दिन यानि 27 अक्तूबर को अपनी मान्यता प्रदान कर दी। नेहरू के अड़ियल रवैये के कारण राज्य की सत्ता शेख अब्दुल्ला को सौंप दी गयी जिन्हें 30 अक्तूबर 1947 को रियासत का आपात प्रशासक बनाया गया। उसके बाद नेहरू शेख को राज्य का प्रधान मंत्री बनाने के लिए दबाव डालने लगे।

27 अक्तूबर 1947 को भारतीय सेना ने श्रीनगर पहुँचते ही आक्रमणकारियों को घाटी से पीछे खदेड़ना शुरू कर दिया लेकिन प्रशासन ने जम्मू के इलाकों को पाकिस्तान के हाथों जाने से रोकने में ज्यादा रूचि नहीं दिखाई। राज्य के प्रधानमंत्री मेहरचन्द महाजन ने चारों ओर से निराश हो कर 2 नवम्बर 1947 को ही नेहरू से अपील की कि मीरपुर, कोटली, पुंछ और नौशहरा में घिरी हुए रियासती सेना को बचाया जाए। जम्मू के मीरपुर, भिंबर, कोटली पुंछ इत्यादि क्षेत्र पंजाबी भाषी थे। क्योंकि पश्चिमी पंजाब पाकिस्तान के हिस्से में आ गया था, अतः वहाँ से हज़ारों हिन्दू सिक्ख शरणार्थी इन क्षेत्रों में टिके हुए थे। पाकिस्तानी सेना का दबाव अब इन्हीं क्षेत्रों पर था। जम्मू–कश्मीर में भारतीय सेना मौजूद थी परन्तु उसे प्रयोग करने का निर्णय शेख अब्दुल्ला को था। जब जम्मू के घिरे हुए इलाकों से पाक सेना व कबाइलियों की क्रूरता के समाचार जम्मू पहुँचने लगे तो जम्मू के नेताओं ने सैनिक अधिकारियों से मिल कर मीरपुर, कोटली आदि इलाकों से हिन्दुओं की सुरक्षा हेतु कदम उठाने को कहा। जब उन्होंने अपनी असमर्थता जताई तो प्रो. बलराज मधोक व प्रेम नाथ डोगरा समेत एक प्रतिनिधि मंडल ने जम्मू हवाई अड्डे पर 15 नवम्बर को नेहरू से भेंट कर इन इलाकों की स्थिति से अवगत कराया और वहाँ

सेना भेजने की प्रार्थना की; परन्तु नेहरू ने शिष्ट मंडल को शेख से मिलने का सुझाव दिया। लेकिन शेख वास्तव में इस में रूचि नहीं ले रहे थे क्योंकि इस रियासती क्षेत्र के लोगों में वह अपनी लोकप्रियता और स्वीकार्यता के प्रति निश्चित नहीं थे।

जम्मू में आम चर्चा होने लगी कि नेहरू और शेख आक्रमणकारियों से कश्मीर घाटी मुक्त करवाने में तो रूचि ले रहे हैं परन्तु जम्मू के इलाकों को पाकिस्तान के हाथों जाने से रोकने में अधिक दिलचस्पी नहीं ले रहे हैं। इसके करीब एक सप्ताह बाद जम्मू के इन इलाकों में हिन्दू, गाजर–मूली की तरह काटे जाने लगे। अनेक हिन्दू स्त्रियों ने अपनी लाज बचाने के लिए आत्महत्या कर ली। पाँच हजार के करीब स्त्रियों को बंदी बनाकर पाकिस्तान ले जाया गया। कोटली शहर खाली करवा लिया गया। मीरपुर शहर का पतन हो गया। केवल चन्द हिन्दू और सिक्ख ही भाग कर जम्मू पहुँचने में सफल हो सके। उन्होंने जो आपबीती सुनाई, पाक सेना व कबाइलियों द्वारा की गई बर्बरता व अमानवीय अत्याचार का वर्णन किया, उसे सुनकर सारे जम्मू में मातम छा गया।

प्रजा परिषद् का गठन

शेख अब्दुल्ला ने प्रशासन हाथ में लेते ही अपने राजनैतिक विरोधियों से कड़ाई से निपटना शुरू कर दिया। जम्मू के लोगों को महाराजा का समर्थक मानते हुए उन पर भी प्रहार शुरू किये। इस स्थिति ने जम्मू के लोगों को अपने लिए एक राजनैतिक दल के गठन हेतु प्रेरित किया। अतः 17 नवम्बर 1947 को 'जम्मू–कश्मीर प्रजा परिषद्' नाम से सार्वजनिक रूप से नये राजनैतिक दल की स्थापना की घोषणा की गई। हरि वजीर को पार्टी अध्यक्ष व हंस राज को महासचिव व ठाकुर सहदेव सिंह को सहसचिव बनाया गया। संगठन सचिव का दायित्व बलराज मधोक को दिया गया, जिनके जुझारू नेतृत्व व कार्यकलाप के कारण ही यह संगठन अस्तित्व में आ सका।

शीघ्र ही प्रजा परिषद् का संगठन पूरे राज्य में फैल गया। प्रजा परिषद् द्वारा राज्य की समस्या को हल करने के लिए कई प्रयत्न किये गये। इसके नेतृत्व ने राज्य में शेख अब्दुल्ला, दिल्ली में सरदार पटेल व पं. नेहरू के समक्ष राज्य की वास्तविक स्थिति रखी। शेख को अपनी वास्तविकता का जग प्रदर्शन न भाया अतः उसने प्रेम नाथ डोगरा को जेल में डाल दिया व बलराज मधोक को परिवार सहित राज्य से निष्कासित कर दिया।

जब जम्मू के सीमावर्ती क्षेत्रों में हिन्दू, सिक्खों की कत्लोगारत शुरू हुई तो वे भागकर जम्मू संभाग के क्षेत्रों में आने लगे। आने वाले शरणार्थी अपने साथ आक्रमणकारियों द्वारा किए गये पाश्विक अत्याचारों की कहानियाँ भी लाते थे। इन घटनाओं की प्रतिक्रिया जम्मू संभाग में हुई और अनेक मुसलमान भी निकाले जाने लगे। हिन्दू–सिक्खों और मुसलमानों पर यह आक्रमण–प्रत्याक्रमण पूरे राज्यों में हो रहे थे। जम्मू भी उससे अछूता नहीं रहा। शेख अब्दुल्ला जब जम्मू में मुसलमानों की हत्याओं का आरोप बार–बार जम्मूवासियों पर लगाते थे तो वे जान–बूझ कर इस पूरी पृष्ठभूमि को भूल जाते थे। धीरे–धीरे शेख प्रशासन के निर्णयों से जम्मू व लद्दाख संभाग के लोग स्वयं को प्रताड़ित अनुभव करने लगे।

जब नेहरू के दबाव से 5 मार्च 1948 को महाराजा ने शेख अब्दुल्ला को प्रधानमंत्री बनाया और मंत्रीमण्डल बनाने का अधिकार दे दिया तब शेख के तेवर और कड़े हो गये और मनमानी करने लगा। उन्होंने जम्मू संभाग का भूगोल और जन सांख्यिकी बदलने के प्रयास प्रारम्भ कर दिये। 1948 में उधमपुर जिला में हिन्दू बहुमत में थे। शेख ने इसमें से मुस्लिम बहुल क्षेत्र निकाल कर नया डोडा जिला बना दिया। इसी प्रकार हिन्दू बहुल रियासी जिले को समाप्त कर उसका बड़ा भाग पुंछ जिले में मिला दिया, जो उस समय पुंछ और राजौरी को मिलाकर एक ज़िला था। इस प्रकार जम्मू संभाग की रचना बदलने के प्रयासों का जम्मू में विरोध शुरू हो गया।

धर्मार्थ न्यास में हस्तक्षेप कर शेख ने सत्ता में आते ही इस न्यास की संपत्ति को जब्त कर लिया। राज्य में संस्कृत अनुसंधान विभाग को बन्द कर अरबी भाषा के अध्ययन के लिये दारुल उलूम की स्थापना की।

कश्मीर संभाग के मुज़फ्फ़राबाद क्षेत्र से विस्थापित होकर आए दुर्भाग्यशाली हिन्दू सिक्खों को कश्मीर घाटी में नहीं बसने दिया गया। बल्कि उन्हें जम्मू और योल कैंप (हि.प्र.) में पहुँचा दिया गया। इसी प्रकार पाक द्वारा कब्जा किए गए क्षेत्र से निर्वासित हिन्दू और सिक्ख जम्मू–कश्मीर में ही बसना चाहते थे। जम्मू में काफी उपजाऊ भूमि खाली थी जिस पर इन लोगों को आसानी से यहाँ बसाया जा सकता था, परन्तु उन्हें भूपाल, भरतपुर और गंगा नगर जैसे दूर नगरों में भेजा गया। अपने ही राज्य के मीरपुर, कोटली, भिम्बर आदि क्षेत्रों से आए हुए विस्थापितों को भी यहाँ बसाने में कई बाधाएँ उत्पन्न की गईं व उन्हें बाहर जाने के लिए उकसाया गया। परन्तु तुर्किस्तान से आए कज़ाक मुसलमानों को कश्मीर में बसाने की शेख प्रशासन ने बड़ी उत्सुकता प्रकट की।

शेख अब्दुल्ला ने नारा दिया –
एक ही पार्टी – नेशनल कांफ्रेस
एक ही रहबर – शेख अब्दुल्ला
एक ही कार्यक्रम – नया कश्मीर

इस नारे का अर्थ स्पष्ट था कि शेख राज्य में एक पार्टी का शासन स्थापित करना चाहते थे और उसमें जम्मू व लद्दाख को उनकी उचित हिस्सेदारी देने को तैयार नहीं थे। जनता का साधारण से साधारण काम भी नेशनल कांफ्रेस के कार्यकर्त्ता की सिफारिश पर ही होता था। नेशनल कांफ्रेस ने अमन ब्रिगेड की स्थापना की जो कांफ्रेस के विरोधियों को डराने–धमकाने का काम करता था। जनता फौज व पुलिस से इतना नहीं डरती थी जितना अमन ब्रिगेड व पार्टी के हल्का प्रेजिडेंटों से। इसी मशीनरी से प्रशासन ने बहुत से लोगों को सीमा पार फेंकवाया। जम्मू में उन्होंने लोकतांत्रिक व्यवस्था स्थापित करने के बजाए पुलिस राज ही कायम कर दिया।

शेख प्रशासन ने राज्य में भूमि अधिग्रहण नियम बनाया। जिसके अंतर्गत 20 एकड़ से अधिक भूमि सरकार द्वारा मुआवजा दिये बिना अधिग्रहण कर दूसरे किसानों को बाँट दी जाती। इस से प्रभावित होने वाले अधिकतर जम्मू क्षेत्र के हिन्दू थे। सरकार ने उनकी भूमि पर कब्जा करके उन पर खेती करने वाले लोगों में बाँट दिया। जम्मू क्षेत्र के अधिकांश लोग सेना में भर्ती होते थे उनकी जमीन किराए पर दूसरे लोग जोतते थे। लद्दाख में भी अनेक मठों, मंदिरों की भूमि भी इस नियम के अंतर्गत आ गई जिस कारण वहाँ की जनता में असंतोष की भावना का प्रकट होना स्वाभाविक ही था। जनता के बीच शेख के प्रति ऐसी धारणा बन गई थी कि – वे कश्मीर में घोर साप्रदायिक हैं, जम्मू आते–आते कम्युनिस्ट बन जाते हैं; और दिल्ली तक जाते–जाते राष्ट्रवादी हो जाते हैं।

इसी बीच एक अन्य घटनाक्रम में जम्मू सांइस कॉलेज के एक कार्यक्रम में नेशनल कांफ्रेस का झण्डा लहराए जाने पर विवाद उठ खड़ा हुआ। 15 जनवरी 1952 की इस घटना ने पूरे छात्रों को एन.एस.ए. (National Students Association) के झण्डे तले ला खड़ा कर दिया। कॉलेज अधिकारियों ने छात्रों पर कार्यवाही करते हुए उनके नेताओं को महाविद्यालय से निष्कासित कर दिया; परिणामस्वरूप छात्र भूख हड़ताल पर बैठ गये। स्थिति को काबू से बाहर जाते देख कॉलेज प्रशासन ने विद्यार्थियों के निष्कासन का आदेश तो वापस ले लिया परन्तु उन पर चार–चार सौ रुपया जुर्माना लगा दिया। प्रशासन के इस तानाशाही रवैये पर छात्रों में रोष बढ़ गया। महाविद्यालय को अनिश्चित काल के लिए बन्द करने पर भी छात्रों के रोष में कमी नहीं हुई। हर दिन प्रदर्शन करते हुए सचिवालय परिसर पहुँच जाते। पुलिस की बार–बार लाठी चार्ज व गोलियों से भी छात्रों के मनोबल में कमी नहीं आई। आम जनता भी छात्रों के हक में प्रदर्शन करने लगी। आंदोलन की आड़ में सरकार परिषद् को दबाने, धमकाने व डराने लगी। स्थिति में कोई सुधार न देखते हुए प्रशासन ने सारे नगर में कर्फ्यू की घोषणा कर दी व परिषद् के

अध्यक्ष प्रेम नाथ डोगरा समेत कई नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। परिषद् ने सरकारी दमनचक्र के प्रति केंद्रीय नेताओं को अवगत कराने हेतु अपना प्रतिनिधिमण्डल दिल्ली भेजा। अन्ततः सरकार ने 9 मार्च 1952 को विद्यार्थियों का निष्कासन निरस्त कर उन पर जुर्माने का आदेश वापस लिया। उनकी शेष माँगें भी प्रशासन द्वारा मान ली गयीं। प्रेम नाथ डोगरा समेत परिषद् के अन्य नेताओं की रिहाई के साथ 6 अप्रैल 1952 को छात्रों ने अपना आंदोलन सम्मानजनक तरीके से वापस लिया।

जम्मू एवं लद्दाख के लोग राज्य का भारत के साथ पूर्ण विलय के इच्छुक थे, जबकि शेख की योजनाएँ कुछ और थीं। इन दोनों संभागों से उनकी मानसिक और राजनैतिक दूरी विद्यमान थी जिस कारण यहाँ की जनता में निराशा उत्पन्न हो रही थी। नेशनल कांफ्रेस की सत्ता जम्मू एवं लद्दाख पर अलोकतांत्रिक ढंग से थोपी जा रही थी। जम्मू के मुख्य राजनैतिक दल प्रजा परिषद् को सामान्य क्रियाकलाप में भी भागीदार नहीं बनाया जा रहा था। शेख अब्दुल्ला इस दल का तो दमन कर ही रहे थे, परन्तु दुर्भाग्यवश नेहरू भी इस में उनका साथ दे रहे थे। सरकार जम्मू से महत्वपूर्ण रिकार्ड श्रीनगर स्थानांतरण कर रही थी। महाराजा के तोशाखाना को भी श्रीनगर ले जाया गया। जम्मू के पुस्तकालयों से भी पुस्तकें श्रीनगर भेजी जाने लगीं। कश्मीरी भाषा को भारत के संविधान की आठवीं अनुसूचि में शामिल कर लिया गया परन्तु डोगरी भाषा, जिनके बोलने वालों की संख्या कश्मीरी भाषा के मुकाबले में कहीं अधिक थी, को स्थान नहीं दिया गया। लद्दाखी भाषा को तो पूछने वाला ही कौन था?

इन्हीं कारणों से तंग आ कर जनता को लोक तंत्र की रक्षा हेतु प्रजा परिषद् के तत्वाधान में सत्याग्रह का शंखनाद करना पड़ा। 14 नवम्बर 1952 को यह दिन राज्य के इतिहास में गौरवशाली रहेगा। प्रजा परिषद ने उसी भीषण संग्राम की रणभेरी बजा दी। सरकार ने आंदोलन का मुकाबला करने हेतु पहले ही सुरक्षा नियमों के तहत पूरे जम्मू में

प्रदर्शन, जुलूसों व सम्मेलनों पर प्रतिबंध लगा दिया। सभी जिले और तहसील मुख्यालय में सत्याग्रह कर गिरफ्तारी देने का क्रम चालू हो गया। पूरे जम्मू में एक ही नारा गूँजने लगा –

"एक देश में दो विधान, दो प्रधान, दो निशान नहीं चलेंगे, नहीं चलेंगे।"

17 नवम्बर को कर्ण सिंह ने सदरे–ए–रियासत की शपथ ग्रहण की। जहाँ श्रीनगर में कर्ण सिंह का अभिनंदन हुआ, वहीं दूसरी ओर प्रजा परिषद् ने इस दिन को काले दिवस के रूप में मनाया और जम्मू में लोगों से उस दिन पूर्ण बंद का आह्वान किया। परिषद् के विरोध के बावजूद सरकार ने घोषणा की थी कि कर्ण सिंह के राज्याध्यक्ष बनने पर नेशनल कांफ्रेंस का हल वाला लाल रंग का झण्डा बाहु किले पर व सचिवालय पर फहराया जाएगा। पुलिस के कड़े पहरे के बीच प्रशासन ने बाहु दुर्ग पर यह ध्वज तो फहरा दिया परन्तु सचिवालय में वह ऐसा नहीं कर सकी। सम्पूर्ण नगर में हड़ताल रही। विशाल जुलूस अंत में एक सार्वजनिक सभा में परिवर्तित हो गया। दूर–ग्रामों से जनता ने आ कर इस प्रदर्शन में भाग लिया। कठुआ, उधमपुर व अन्य नगरों में पूरा बंद रहा। सत्याग्रही जम्मू के मुख्य बाजारों में घूम कर नारा लगा रहे थे– "हम भारतीय संविधान चाहते हैं। राज्य में अलग झण्डा नहीं चलेगा।"

जम्मू में प्रतिदिन प्रदर्शन होने लगे। 24 नवम्बर को कर्ण सिंह के जम्मू आगमन पर हवाई अड्डे से महल तक पूरा शहर काले झण्डों से भर गया। उसी रोज प्रजा परिषद् का जुलूस भी निकला। 26 नवम्बर को श्री प्रेमनाथ डोगरा ने इस आंदोलन की पहली गिरफ्तारी दी। इस गिरफ्तारी के समय पुलिस ने भीड़ पर लाठी चार्ज किया, जिसमें 100 के करीब आंदोलनकारी घायल हुए। इसके बाद गिरफ्तारियाँ निरंतर होने लगीं। जिन लोगों को गिरफ्तारी देनी होती थी, उनके गले में हार डाले जाते थे और उनके नेतृत्व में जुलूस निकलता था। हज़ारों की संख्या में

लोग हाथ में भारत का संविधान व राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद का चित्र ले कर नारे लगाते हुए चलते थे –

एक देश में दो विधान, दो प्रधान, दो निशान– नहीं चलेंगे। धारा 370 तोड़ दो, भारत का संविधान लागू करो। 'प्रजा परिषद् जिंदाबाद' और 'प्रेम नाथ डोगरा जिन्दाबाद' के नारे भी गूँजते थे।

सांबा में 27 नवम्बर को डोगरी भाषा के प्रख्यात कवि ठाकुर रघुनाथ सिंह के नेतृत्व में लोगों ने प्रदर्शन किया। पुलिस की गोलीबारी से अनेक लोग घायल हुए। 28 नवम्बर को उधमपुर में भी पुलिस ने प्रदर्शनकारियों पर लाठी चार्ज किया। देखते ही देखते प्रजा परिषद् का आंदोलन जम्मू संभाग के दूर–दूर गाँव तक फैल गया। देश के समाचार पत्रों में भी इस आंदोलन के समाचार आने प्रारम्भ हो गये। ट्रिब्यून ने लिखा –

"फैल रहा है आंदोलन। मानो प्रदेश में स्थान–स्थान पर सरकारी भवनों पर तिरंगा फहराने की होड़ सी लग गई हो।"

पांचजन्य की टिप्पणी के अनुसार –

"सत्याग्रह जम्मू में प्रारम्भ हुआ है, परन्तु यह लड़ाई केवल जम्मू की नहीं बल्कि पूरे भारत की है। अतः भारत की जनता और सभी दलों के लिए आवश्यक होगा कि वे जम्मू के अपने बन्धुओं के साथ मिलकर खड़े हों।"

शेख अब्दुल्ला ने बख्शी गुलाम मोहम्मद को जम्मू संभाग का प्रभारी बनाया हुआ था जो सत्ता के बल पर आंदोलन को कुचलने का प्रयास कर रहे थे। जम्मू के लोगों का गुस्सा दिन प्रतिदिन तीव्र होता जा रहा था। रियासी में लोगों ने थाने पर कब्जा कर वहाँ तिरंगा फहरा दिया। भद्रवाह में स्वामी राज वकील ने प्रदर्शनकारियों का नेतृत्व कर कचहरी पर तिरंगा लहराया। शामा चक गाँव में प्रदर्शन व जुलूस के बाद

पुलिस थाने पर तिरंगा लहराया गया। सभी स्थानों पर पुलिस और प्रदर्शनकारियों के बीच जोरदार झड़पें हुईं व आंदोलनकारियों ने गिरफ्तारियाँ दीं। राज्य का नया ध्वज जो नेशनल कांफ्रेस पार्टी के ध्वज से मिलता जुलता था सरकार ने जनता के विरोध के बावजूद अन्ततः 1 दिसम्बर 1952 को सचिवालय पर लहरा दिया। जम्मू और राज्य के अन्य स्थानों में इसका तीव्र विरोध हुआ।

उधमपुर और जम्मू में बड़ी संख्या में सत्याग्रही गिरफ्तार हुए। स्थिति दिन–प्रतिदिन बिगड़ती जा रही थी। अब यह आंदोलन प्रजा परिषद् का न रह कर जन–आंदोलन बन गया था। जम्मू संभाग के इस आंदोलन में सब जाति व धर्म के लोग भाग ले रहे थे। भद्रवाह में सत्याग्रह का नेतृत्व ख्वाजा अब्दुल हसन ने किया और कहा कि "हम भारत में इसलिए जाना चाहते हैं, क्योंकि यहाँ का संविधान पंथनिरपेक्ष है और उसने देश के 4 करोड़ मुसलमानों को भी मौलिक अधिकार दिए हैं।" उधमपुर में पुलिस द्वारा लाठी चार्ज किया गया व अश्रुगैस के गोले छोड़े गए। जम्मू में 10 और सत्याग्रही गिरफ्तार किए गये। किश्तवाड़ में भी लाठी चार्ज हुआ। कठुआ में औरतों ने जुलूस निकाले। अखनूर में सत्याग्रहियों ने स्कूल में तिरंगा लहराया। बिश्नाह में 5 सत्याग्रही बंदी बनाए गए।

2 दिसम्बर को उधमपुर में जनता के एक विशाल प्रदर्शन पर पुलिस ने गोली चला दी। 300 से अधिक घायल हुए। अनेक प्रदर्शनकारी गिरफ्तार किए गये। पूरे जम्मू संभाग में आंदोलन तीव्र गति से फैलने लगा। आंदोलन में पुरुष–औरतों की तो भागीदारी थी ही, काफी संख्या में मुसलमान भी जुड़ने लगे। सत्याग्रहियों के मनोबल को गिराने के लिए सरकार उन्हें जम्मू जेल से निकालकर श्रीनगर की जेल में भेजने लगी। 7 दिसम्बर को जम्मू बार एसोसिएशन ने आंदोलन के समर्थन में एक प्रस्ताव पारित कर सरकार से माँग की कि भारतीय संविधान के मौलिक अधिकार राज्य के लोगों को भी मिलने चाहिए। उच्चतम न्यायालय का अधिकार क्षेत्र जम्मू–कश्मीर पर भी लागू होना चाहिए।

12 दिसम्बर को नेहरू के संसद में दिये गये वक्तव्य ने आंदोलन की आग में तेल का काम किया। उन्होंने स्पष्ट आरोप लगाया कि यह आंदोलन राज्य सरकार के खिलाफ न हो कर भारतीय संसद के खिलाफ है। दुर्भाग्यवश नेहरू जम्मू की स्थिति को शेख की आँखों से देख रहे थे।

आंदोलन में बलिदानियों का संक्षिप्त विवरण :

14 दिसम्बर 1952 (छंब)

आंदोलन को एक मास हो गया था। इसमें छंब के मेला राम ने पहली शहादत दी। तहसील के मुख्यालय पर राष्ट्रीय ध्वज फहराने का कार्यक्रम था। मेला राम सहित चार सत्याग्रही तिरंगा हाथ में लेकर व राष्ट्रपति का चित्र छाती पर लटका कर हज़ारों प्रदर्शनकारियों के हुजूम के आगे चल रहे थे। तहसील मुख्यालय पर पुलिस और मलेशिया के सख्त पहरे के बावजूद मेला राम तिरंगा ले कर भवन की दीवार पर चढ़ गया। पुलिस ने नीचे से गोली चला दी। मेला राम हाथ में ही तिरंगा पकड़े धड़ाम से नीचे जमीन पर आ गिरा और उसने भारत की अखंडता के लिए अपने प्राण निछावार कर दिए।

28 दिसम्बर 1952 (सुंदरबनी)

इस दिन सुंदरबनी में झण्डा फहराना तय हुआ। सुबह से ही आस–पास के गाँवों से लोग सुंदरबनी पहुँचने शुरू हो गये थे। यह निर्णय हुआ कि जमादार फूला राम अपने अन्य साथियों के साथ सत्याग्रह कर गिरफ्तारी देंगे। पुलिस व मलेशिया भी काफी संख्या में मौजूद थी। तहसील के सामने मोर्चा लग गया। फूलाराम ने तहसील पर तिरंगा फहरा दिया, लेकिन मलेशिया के सैनिकों ने झंडे की डोर तोड़ कर उसे नीचे उतार दिया। लेकिन सत्याग्रहियों ने तिरंगा फिर लहरा दिया। पुंछ के जिलाधीश ने स्वयं झंडा उतारने की कोशिश की। विमला

देवी ने उन्हें रोकने का प्रयास किया। इसी आपा–धापी में जिलाधीश नीचे गिर गये। पुलिस ने गोली चला दी। कृष्ण लाल (25) व राम लाल (20) मौके पर ही गोली लगने से दम तोड़ गये। बेली राम गोली लगने से घायल होकर गिर पड़े। पुलिस ने एक बड़ा पत्थर उस के सिर पर मारा जिस कारण उनकी भी वहीं मृत्यु हो गई।

11 जनवरी 1953 (हीरानगर)

राज्य के उपप्रधान मंत्री, बख्शी गुलाम मोहम्मद, के हीरानगर आगमन पर 5000 के करीब प्रदर्शनकारी एक जुलूस की शक्ल में उन्हें ज्ञापन देने जा रहे थे कि रियासत का भारत में पूरा अधिमिलन होना चाहिए। पुलिस ने रास्ते में ही उन्हें रोक लिया। लेकिन प्रदर्शनकारी बख्शी से मिलने पर अड़े हुए थे। पुलिस ने उन पर पहले लाठी चार्ज किया फिर अश्रुगैस के गोले दागे। उसके बाद गोली चला दी, जिस कारण 70–80 लोग घायल हो गये जिनमें 8 लोगों को गंभीर अवस्था में अस्पताल में दाखिल करवाना पड़ा। इस गोलीकांड में दो प्रदर्शनकारी बिहारी लाल व भीषम सिंह शहीद हुए। इनके शवों को इनके परिजनों के हवाले न कर के बसंतपुर पुलिस चौकी ले जाया गया जहाँ इनके शवों पर पेट्रोल छिड़क कर आग लगा दी गयी। दोनों मृतकों के शवों को अधजली हालत में छोड़ कर पुलिस चली गई। रा.स्व.संघ के कुछ स्वयंसेवकों को जब शाहपुर कंडी के लोगों द्वारा इस जघन्य अपराध का पता चला तो वह फौरन उस स्थान पर पहुँच गये। अधजले शवों को हीरा नगर ला कर उनका दाह संस्कार विधिपूर्वक किया गया। प्रजा परिषद् ने इस हत्याकांड के विरोध में सात दिन की हड़ताल की घोषणा की। पूरे जम्मू संभाग के सभी स्थानों पर यह हड़ताल रही।

30 जनवरी 1953 (ज्यौड़ियाँ)

इस दिन हज़ारों किसान रियासत के भारत में पूर्णमिलन की माँग करते हुए ज्यौड़ियाँ में एकत्र हुए। गाँव के चौराहे पर पुलिस ने गोली

चला दी जिसमें 125–150 के करीब लोग घायल हुए। इस गोली कांड में 6 लोग (मोहन लाल, ज्ञान सिंह, त्रिलोक सिंह, बलदेव सिंह, बसंत सिंह और हरि सिंह) शहीद हुए। गोली कांड के तीन घंटे बाद तक कश्मीर मलेशिया आस–पास के गाँव में लूट–पाट करती रही।

1 मार्च 1953 (रामबन)

इस दिन प्रातःकाल से ही लोग इकट्ठा होना शुरू हो गये। रामबन की कचहरी पर तिरंगा फहराने का कार्यक्रम था। लगभग 3000 प्रदर्शनकारी हाथ में तिरंगा लेकर तहसील की ओर बढ़ने लगे। पुलिस ने बिना किसी कारण गोलीबारी शुरू कर दी। दो नवयुवक शिब्बा राम और देवी शरण पुलिस की गोली खा कर गिर पड़े। भगवान दास के सीने से भी गोली पार हो चुकी थी। तीनों वीरों ने पल भर में मातृभूमि की खातिर अपने प्राणों का बलिदान दे दिया। दूसरे दिन जम्मू में पूर्ण हड़ताल रही।

इस प्रकार इस सारे आंदोलन में राज्य भर के 15 शहीदों ने राज्य का भारत में पूर्ण मिलन हेतु अपना बहुमूल्य बलिदान दिया। सत्याग्रह को बंद करवाने के लिए कश्मीर मलेशिया सत्याग्रहियों की अमानुषिक पिटाई तो करती ही थी, साथ ही सरकार ने उन को सजा देने और जुर्माना लगाने का काम भी शुरू कर दिया। जुर्माना न अदा करने पर उनके घरों के सामान को कुर्क किया जाने लगा। दिसम्बर मास में जम्मू के कारागार में पं. प्रेम नाथ डोगरा पर मुकदमे की कार्यवाही कर उन्हें 18 मास सश्रम कैद की सजा सुना दी गई। सरकारी अत्याचार अपनी सभी सीमाएँ तोड़ रहा था। अखनूर के पास दानु गाँव में लोगों के सभी पालतु पशु नीलाम करवा दिए गये। पुलिस व मलेशिया के सैनिकों द्वारा घरों से महिलाओं व बुजुर्गों को बाहिर निकाल कर अनेक घर धराशायी कर दिए गये। सरकार गाँव में सामूहिक आर्थिक दंड लगा रही थी और अर्थ दंड न देने पर सैंकड़ों परिवारों की संपत्ति नीलाम करवा कर अर्थ दंड वसूल किया गया। मलेशिया के सैनिक कहते थे कि इस प्रकोप से बचने

का एक ही रास्ता है कि नेशनल कान्फ्रेंस में शामिल हो जाओ या कम से कम 'शेर–ए–कश्मीर जिंदाबाद' का नारा लगाओ। लेकिन इतने अत्याचारों के बाद भी कोई तैयार न हुआ।

अप्रैल 1953 के अंत में प्रजा परिषद् ने अपना असहयोग आंदोलन प्रारम्भ किया। जम्मू कारागार प्रजा परिषद् के सत्याग्रहियों से भर गया था । लेकिन वहाँ भोजन तक की व्यवस्था ठीक नहीं थी। इसकी माँग कर रहे सत्याग्रहियों पर जेल में ही लाठी चार्ज किया गया, जिससे कई सत्याग्रही घायल हुए। इसके विरोध में पं. प्रेम नाथ डोगरा ने जेल में ही 1 जून से भूख हड़ताल आरम्भ कर दी। जेल प्रशासन द्वारा इनकी माँगें स्वीकार करने पर ही इन्होंने भोजन ग्रहण किया। 18 जून को श्री डोगरा को जम्मू से श्रीनगर भेज दिया गया।

प्रजा परिषद् का आंदोलन अब अपने निर्णायक मोड़ पर पहुँच गया था। इस आंदोलन के समर्थन में देश के अन्य भागों में भी आंदोलन शुरू हो गया था और उस की तीव्रता दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। डा. श्यामा प्रसाद मुखर्जी के जम्मू कश्मीर में प्रवेश करने पर राज्य सरकार द्वारा की गई गिरफ्तारी ने आंदोलन को गति ही प्रदान नहीं की बल्कि सारे देश की आँखें जम्मू और श्रीनगर की ओर मुड़ गईं।

उपसंहार

आंदोलन के चलते प्रजा परिषद् के नेताओं ने दिल्ली जा कर दूसरे राजनैतिक दल के नेताओं से मिलकर अपनी स्थिति स्पष्ट की और शेख प्रशासन द्वारा राज्य के शाँतिप्रिय और राष्ट्रवादी जनता पर घोर अत्याचार व जुल्म का विवरण दिया, जिसका असर अच्छा हुआ। देश भर में जम्मू की जनता के प्रति सहानभूति पैदा होने लगी। 29–31 दिसम्बर 1952 को कानपुर में जन संघ के अधिवेशन में जम्मू के इस आंदोलन पर विस्तृत चर्चा हुई। जिसमें प्रस्ताव पारित हुआ कि यह आंदोलन न केवल कश्मीर राज्य के भविष्य के लिए ही महत्वपूर्ण है अपितु भारत की सुरक्षा की दृष्टि

से भी महत्वपूर्ण है। भारतीय जनसंघ ने एक सात सदस्यीय दल को जम्मू की स्थिति का आकलन करने के लिए वहाँ भेजने का निश्चय किया परन्तु भारत सरकार ने इस की अनुमति प्रदान नहीं की। डा. श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने भी इस संदर्भ में समस्या को सुलझाने हेतु काफी प्रयास किया व नेहरु व अब्दुल्ला से पत्र व्यवहार भी किये परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली क्योंकि नेहरु इस सारी स्थिति को शेख अब्दुल्ला के दृष्टिकोण से ही देख रहे थे।

आई. बी. (I.B.) के निदेशक ने भी माना कि राज्य सरकार ने आंदोलन का मुकाबला बहुत सख्ती से किया, कहीं–कहीं तो अत्यंत बर्बरतापूर्वक। लेकिन इसके बावजूद यह आंदोलन तेज होता गया। आंदोलन जितना तेज होता गया, सरकार की बदले की भावना उतनी ही बढ़ती गई। शेख अब्दुल्ला अपना अधिकतर समय राज्य से बाहर विदेशों में जाकर व्यतीत कर रहे थे, कभी कश्मीर का पक्ष सयुंक्त राष्ट्र में रखने के लिए, कभी विदेशों में अपनी छवि सुधारने और राज्य के लिए कोई अन्य विकल्प तलाशने की खातिर। ब्रिटेन व अमेरिका पहले ही जम्मू–कश्मीर राज्य के भारत के मिलन से नाखुश थे। अब ये देश अपने राजदूतों के माध्यम से शेख को स्वतंत्र राज्य घोषित करने के सपने दिखाने लगे। शेख शायद इन देशों की कुचालों को समझ न पा रहे थे, अतः उनकी योजनाओं में फंसते चले गये।

इधर जम्मू संभाग की स्थिति से निपटने का जिम्मा इन्होंने अपने सहयोगी बख्शी गुलाम मुहम्मद, मौलाना मसूदी व दुर्गा प्रसाद धर को दिया था जो राष्ट्र प्रेमी जम्मू की जनता पर घोर अत्याचार व अंग्रेज शासकों से भी अधिक बर्बरतापूर्वक व्यवहार कर रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था कि इस जघन्य अपराध में कश्मीरी जनता ने भी जम्मू के लोगों का साथ न देकर अपने नेताओं का ही समर्थन किया। उन्हें शायद मालूम नहीं था कि ठीक 40 वर्ष उपरान्त कश्मीर में भी ऐसा घटनाक्रम होने वाला है। खैर यह तो इतिहासकार ही निर्णय लेने में सक्षम है कि क्या सही व क्या गलत था।

अब देश भर में प्रजा परिषद् के आंदोलन को समर्थन प्राप्त होने लगा। जनसंघ की कार्यसमिति ने 10 फरवरी 1953 को इस आंदोलन के समर्थन में प्रस्ताव पारित किया और इस के समर्थन में देश भर में आंदोलन चलाने का निर्णय लिया। अन्य दल रामराज्य परिषद्, हिन्दू महासभा व अकाली दल के सहयोग द्वारा इस आंदोलन को चलाने हेतु एक संयुक्त संघर्ष समिति का गठन हुआ और इस समिति द्वारा 5 मार्च 1953 से देश व्यापी आंदोलन शुरु करने का निर्णय लिया गया। सर्वप्रथम 5 मार्च को देश भर में जम्मू – कश्मीर दिवस मनाने का आह्वान किया। इस का भिन्न–भिन्न राज्यों में अच्छा समर्थन मिला। राजस्थान और पंजाब में लोगों ने बड़े उत्साह से इस कार्यक्रम में भाग लिया। देश भर में चल रहे सत्याग्रह में गिरफ्तारियाँ देने हेतु बड़ी संख्या में लोग भाग लेने लगे। इस हेतु दो केन्द्र बनाए गये। एक दिल्ली दूसरा पठानकोट। समस्त भारत से सत्याग्रही दिल्ली और पठानकोट पहुँचने लगे। लोगों की इस भागीदारी से पुलिस बौखला गई। जगह–जगह गिरफ्तारी व शान्तिप्रिय राष्ट्रवादी जनता पर लाठी चार्ज होने लगा। सत्याग्रहियों पर अत्याचार करने के अतिरिक्त उन्हें डराया, धमकाया जाने लगा।

मई 1952 में पं. प्रेम नाथ डोगरा अपने राज्य के लिए डा. श्यामा प्रसाद मुखर्जी को दिल्ली में मिले थे तब डा.मुखर्जी पंडित जी से बड़े प्रभावित हुए और कहा कि आप जम्मू चलो मैं भी आता हूँ। प्रजा परिषद् के सम्मेलन में भाग लेने अगस्त में वह कठुआ गये और घोषणा की – **मैं जम्मू कश्मीर के लिए भारतीय संविधान लाऊँगा नहीं तो अपने प्राण दे दूँगा।** अब ठीक अपने वायदे अनुसार 7 मई 1953 को उन्होंने जम्मू जाने की घोषणा की। इस घोषणा से वातावरण बहुत उत्तेजित हो गया और सत्याग्रहियों का उत्साह भी कई गुणा बढ़ गया। उसके बाद की घटनाओं ने आंदोलन का स्वरूप ही बदल दिया।

राज्य प्रशासन ने जम्मू कश्मीर में आने वाले हर भारतीय को अनुमति पत्र लेना अनिवार्य कर दिया। प्रजा परिषद् व भारतीय जन संघ

ने इसका कड़ा विरोध किया। पूरे देश में यह नारा गूँजने लगा "एक देश में दो प्रधान दो विधान, दो निशान नही चलेंगे"। डा. मुखर्जी ने सत्याग्रह करते हुए 10 मई को राज्य सरकार की सीमा में प्रवेश किया परन्तु राज्य सरकार के पूर्व नियोजित निर्णय अनुसार उन्हें गिरफ्तार कर सीधे श्रीनगर ले जा कर कारागार में बन्द कर दिया गया। वहाँ उनसे परिवार तक के लोगों को मिलने नहीं दिया गया। 19 जून को उनकी तबीयत खराब होने लगी। 22 जून के आते–आते उनकी हालत गंभीर होने लगी तो उन्हें श्रीनगर अस्पताल में दाखिल किया गया। 23 जून प्रातः 2.30–3 बजे के करीब बड़ी ही रहस्यमयी परिस्थिति में उनकी मृत्यु की घोषणा की गई। उनके शव को पहले दिल्ली ले जाना था परन्तु वहाँ के उत्तेजित वातावरण को देखते हुए उनके पार्थिव शरीर को सीधे कोलकाता भेज दिया गया।

24 जून 1953 को प्रजा परिषद् की ओर से जम्मू के परेड ग्राउंड में डा. मुखर्जी के निधन पर एक सार्वजनिक शोक सभा का आयोजन हुआ। इस सभा में तेरह दिन के लिए आंदोलन स्थगित करने की घोषणा हुई। 13 दिन तक शोक मनाने के बाद जम्मू–कश्मीर को भारत में पूर्णतया मिलाने हेतु पुनः शक्तिशाली आंदोलन प्रारम्भ करने का संकल्प लिया गया। इसी बीच पंडित प्रेम नाथ डोगरा जी की बख्शी गुलाम मोहम्मद व डी.पी. धर से भेंट हुई। स्वयं नेहरु ने भी प्रजा परिषद् के नेताओं से मिलकर उनके पक्ष को धैर्यपूवर्क सुना। जो कार्य डा. मुखर्जी के जीते जी न हो सका, वह उनके बलिदान ने कर दिखाया। इस बलिदान के बाद नेहरु ने 3 जुलाई को सभी पक्षों से आंदोलन बन्द करने की अपील की जिसके फलस्वरूप प्रजा परिषद् ने 7 जुलाई 1953 से अपना आंदोलन रोक दिया और देश भर में विभिन्न राजनैतिक दलों की बनी संयुक्त संघर्ष समिति ने सत्याग्रह आंदोलन बंद करने का निश्चय किया।

पं. नेहरु ने अपनी भूल स्वीकार करते हुए 20 साल के गहरे दोस्त शेख के कुकृत्यों पर खेद प्रकट कर प्रजा परिषद् के नेताओं से बातचीत

की। शेख अब्दुल्ला बरखास्त हुए और उन्हें गिरफ्तार कर उधमपुर जेल भेजा गया। जम्मू कश्मीर विधान सभा ने एक प्रस्ताव स्वीकृत कर राज्य के भारत में अधिमिलन का अनुमोदन किया। इस प्रकार जम्मू के इस ऐतिहासिक संघर्ष का 14 नवम्बर 1952 से प्रारम्भ हो कर 7 जुलाई 1953 को एक सम्मानजनक मोड़ पर आ कर समापन हुआ। इसमें कई महान् लोगों को, विशेषकर डा. मुखर्जी को, अपना बलिदान देना पड़ा परन्तु जम्मू निवासियों ने पूरे देश में अपने साहस, धैर्य, सहनशीलता व राष्ट्र–प्रेम की भावना द्वारा अपनी एक विशेष पहचान बना ली।

(पंडित नेहरू जम्मू की स्थिति का आकलन शेख अब्दुल्ला के दृष्टिकोण से करते हुए)
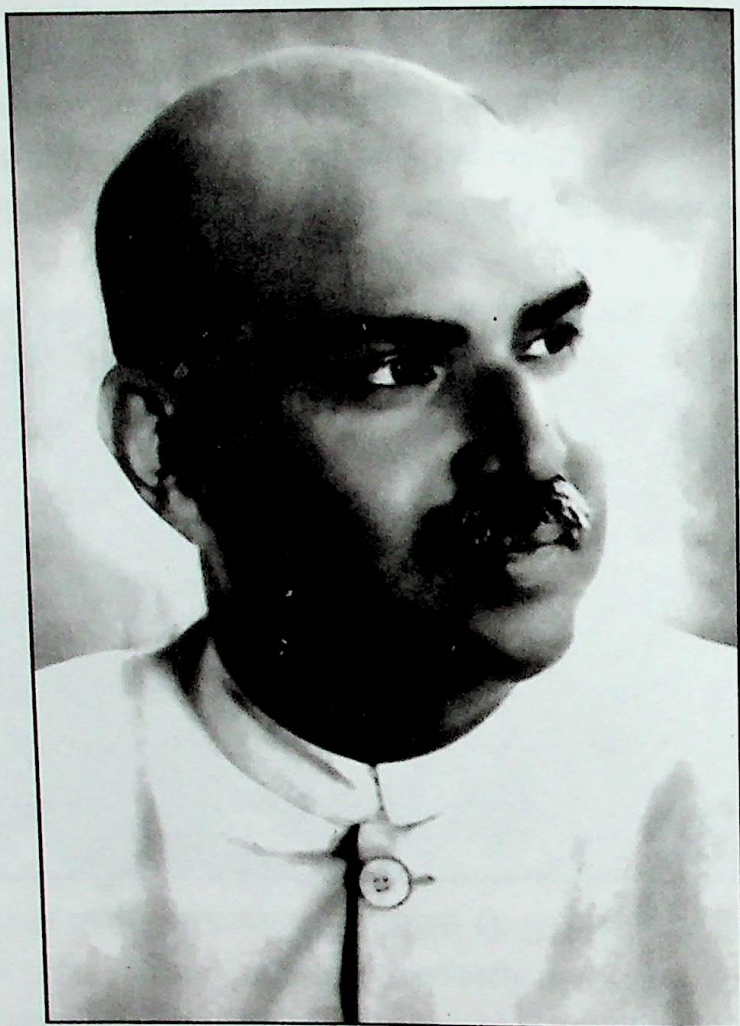
(डा. श्यामा प्रसाद मुखर्जी)

श्री अमरनाथ भूमि

-सन् 2008 का एक ऐतिहासिक आंदोलन

अनादिकाल से चली आ रही बर्फानी शिवलिंग के दर्शन की यात्रा हिन्दुओं की आस्था का प्रतीक है। प्राकृतिक रूप से बना शिवलिंग एक गुफा में स्थित है और यह गुफा श्री अमरनाथ तीर्थ के नाम से जानी जाती है। प्रत्येक श्रावण पूर्णिमा को इनके दर्शन के लिये श्रद्धालु आते हैं। कश्मीर में हिन्दुओं का विस्थापन किये जाने के बाद यह स्थान अधिक प्रसिद्ध हुआ और देश भर से तीर्थ यात्रियों के आने के कारण इनकी संख्या जहाँ कुछ सैंकड़ों में रहती थी, वहाँ यह अब लाखों का आँकड़ा पार कर चुकी है। इस यात्रा में श्रद्धालुओं की संख्या पाँच–दस गुणा और बढ़ सकती है, परन्तु यात्रा सुचारू ढंग से चलाने हेतु कड़ा नियंत्रण इस दिशा में बाधक बन रहा है।

श्री अमरनाथ यात्रा सभी तीर्थों से अत्यंत कठिन है। कहीं–कहीं रास्ते में बर्फ और गलेशियर मिलते हैं। पवित्र गुफा तक पहुँचने के लिए एक ही रास्ता था जो पहलगाम से करीब 35 की.मी. दूर है। अभी कुछ दशक पहले बालटाल के रास्ते 15 कि.मी. एक छोटा रास्ता तैयार किया गया परन्तु यह अत्यन्त दुर्गम एंव कठिन है। समस्या इसी रास्ते को लेकर उत्पन्न हुई।

सन् 1996 में श्री अमरनाथ यात्रा के दौरान भारी बर्फबारी, बारिश और भूस्खलन के कारण काफी अधिक संख्या में श्रद्धालु काल का ग्रास बन गये, क्योंकि बालटाल वाले रास्ते में यात्रियों के लिए विश्राम करने व ठहरने के लिए कोई पर्याप्त स्थान उपलब्ध न था। यात्रियों को 24 से 48 घण्टों तक बारिश और बर्फ में खड़े रह कर सहायता का इन्तजार करना पड़ा। इनमें से अधिक काल का ग्रास बन गये; जो बच गये वे भी एक माह बिस्तर पर पड़े रहने के बाद ही जमीन पर पाँव रख सके। इस त्रासदी के बाद केन्द्र सरकार ने श्री नीतिश सेन गुप्ता की अध्यक्षता

में एक कमेटी का गठन किया जिसे यात्रियों की सुरक्षा एवं सुविधाएँ देने के लिए सुझाव देने को कहा गया।

श्री सेन गुप्ता कमेटी ने कड़ी मेहनत करके अपनी रिपोर्ट सरकार को दे दी। इनके सुझाव थे कि यात्रा की अवधि बढ़ानी चाहिए तथा यात्रियों के ठहरने के लिए स्थान उपलब्ध हों और यह यात्रा तीन चरणों में पूरी हो। श्री सेन गुप्ता का मानना था कि बालटाल का रास्ता छोटा होने के कारण एक तो यात्री एक दिन में वापस श्रीनगर पहुँच सकते हैं, दूसरा इससे पहले पहलगाम के मार्ग पर भीड़ को कम किया जा सकता है। कमेटी की इन सिफारिशों के बाद राज्य सरकार को केन्द्र द्वारा यात्रियों को अधिक सुविधाएँ देने की बात कही जाने लगी। परन्तु राज्य सरकार अकारण ही इसमें टाल–मटोल करने लगी।

सन् 2008 में आखिरकार राज्य सरकार ने अनमने ढंग से 800 कनाल भूमि यात्रियों की सुविधा के लिए बालटाल में श्राइनबोर्ड को देने के आदेश जारी कर दिये। इस आदेश के साथ ही घाटी में हालात बिगड़ने शुरु हो गये। जमीन की आड़ में देश द्रोही नारे लगने लगे। तत्कालीन राज्य सरकार मूक दर्शक बन कर देशद्रोहियों को राजनैतिक सहायता प्रदान करने लगी। ज़मीन वापसी की माँग ने घाटी में ज़ोर पकड़ लिया। उस समय राज्य में कांग्रेस व पी.डी.पी. की गठबंधन सरकार थी। पी.डी.पी. ने सरकार से हाथ खींच लिया; फलस्वरुप राज्य सरकार अल्पमत में आ गई और अमरनाथ यात्रियों के लिये बालटाल की जो भूमि श्राइन बोर्ड को दी गई थी, उस आदेश को निरस्त कर दिया गया।

इसी बीच राज्य के तत्कालीन राज्यपाल एस के सिन्हा के स्थान पर केन्द्र सरकार ने नये राज्यपाल एन.एन. वोहरा की नियुक्ती के आदेश जारी कर दिये। वोहरा ने आते ही आवंटित जमीन के विषय में कुछ ऐसे कदम उठाए जिनसे कश्मीर में हालात तो सामान्य हो गये, परन्तु जम्मू में इस के विरोध में जबरदस्त आक्रोश फैल गया। राज्यपाल

ने राज्य सरकार को एक पत्र सौंपा जिसमें यह लिखा था कि यह ज़मीन श्राइन बोर्ड को नहीं चाहिए। यह पत्र सर्वथा असंवैधानिक था क्योंकि श्राइन बोर्ड के संविधान के अंतर्गत राज्यपाल अकेले कोई भी निर्णय नहीं ले सकते। बोर्ड के 9 सदस्यों में से कम से कम 5 सदस्यों के हस्ताक्षर किये बगैर कोई भी निर्णय संवैधानिक नहीं कहा जा सकता।

सरकार द्वारा भूमि आदेश निरस्त करने के बाद जम्मू में इसकी बड़ी तीखी प्रतिक्रिया हुई, जो कि स्वाभाविक थी। जम्मू के राष्ट्रवादी समाज को लगा कि जम्मू की धार्मिक भावनाओं के साथ–साथ पूरे देश के साथ धोखा है। लोगों की भावनाएँ और आस्था आहत हुई है। चूंकि इस यात्रा में पूरे भारत से श्रद्धालु भाग लेते हैं, अतः हर ओर इसका व्यापक असर होने लगा। राष्ट्रवादी समाज ने जम्मू के प्रमुख अधिवक्ता (एडवोकेट) श्री लीला करण शर्मा की अध्यक्षता में एक सघंर्ष समिति का गठन किया, जिसमें प्रमुख समाज सेवी श्री तिलक राज शर्मा एडवोकेट, ब्रिगेडियर (सेवा निवृत्त) सुचेत सिंह आदि शामिल किये गये। जनता में इतना जोश था कि जम्मू संभाग का बच्चा–बच्चा इस समिति का सदस्य बन गया।

जम्मू में सरकार के हिन्दू और राष्ट्र विरोधी निर्णय के कारण समाज की भावनाएँ भड़क उठीं। पूरा जम्मू संभाग बंद हो गया। शांतिपूर्ण तरीके से लोग प्रदर्शन करने लगे। समाज के सभी लोग अपने राजनैतिक तथा अन्य मतभेद भुलाकर एक मंच पर आ गये। प्रशासन जम्मू की इस एकता से तिलमिला उठा। उन्होंने जम्मू में आग लगाने के प्रयास किये। प्रदर्शन के पहले ही दिन पुलिस हिंसक हो गई। मुट्ठी में शाँत प्रदर्शनकारियों पर सीधे गोलियाँ दागी गईं। तीन लोग घायल हो गये। हाथ में तिरंगा, जुबां पर "भारत माता की जय" राज्य प्रशासन को पसन्द नहीं आया। एक दम पूरे जिले में कर्फ्यू लगा दिया गया। लोगों के आक्रोश के आगे कर्फ्यू का स्थान–स्थान पर उल्लंघन होने लगा। पुलिस की दमनकारी कार्यवाही में 12 लोग मारे गये। अनेक

लोगों के अंग–भंग हो गये तथा सैंकड़ों की तो आंखें ही चली गईं। अनेक लोगों पर झूठे मुकद्दमे दायर कर उन्हें जेलों में डाल दिया गया। यहाँ तक कि समाज के प्रतिष्ठित साधु समाज को भी नहीं बख्शा गया। पूज्य संत श्री दिनेश भारती पर नागरिक सुरक्षा कानून (PSA) लगा दिया गया।

लगभग 40 दिन बीत जाने पर केन्द्र को लगा कि जम्मू की कोई चिंता करनी चाहिए। केन्द्र ने एक सर्वदलीय दल राज्य में भेजा। इस दल में ऐसे लोग थे जिन्हें न तो राज्य की समस्या का पता था और न ही जम्मू कश्मीर से दूर–दूर का वास्ता। संघर्ष समिति ने माँग रखी कि जब तक इस दल में महबूबा, फारुख, आजाद और राज्यपाल वोहरा जैसे जम्मू विरोधी लोग हैं तब तक सर्वदलीय दल के साथ कोई बात नहीं होगी। समिति की यह माँग मानी गई और इन चारों को सर्वदलीय बैठक से अलग कर दिया गया। समिति ने फिर यह माँग की कि यह बैठक राजभवन की जगह किसी और स्थान पर हो। संघर्ष समिति की यह शर्त भी मान ली गई।

जम्मू में चला यह ऐतिहासिक आंदोलन किसी भी विशेष दल का न होकर पूरे समाज का आंदोलन था, जिसमें राष्ट्रवादी लोगों ने तिरंगा हाथ में लेकर पिछले 6 दशकों से जम्मू संभाग के साथ किये गये भेद–भाव के दबे हुए गुस्से को प्रकट किया। इसलिए केन्द्र सरकार ने आंदोलन की गम्भीरता को देखते हुए श्री अमरनाथ श्राईन बोर्ड को जमीन और उसके अधिकार वापस किये। आंदोलन में हुए शहीद और घायलों को उचित मुआवजा देने की बात मानी। व्यापारियों, ट्रांसपोटरों, दिहाड़ीदारों को हुए नुक्सान की भरपाई का भी आश्वासन दिया। (यह बात अलग है कि यह सारे आश्वासन केवल कागज़ों तक ही सीमित रहे।)

हिन्दू आस्था और राष्ट्रीय एकता की प्रतीक श्री अमरनाथ यात्रा और शिवभक्त यात्रियों के स्वाभिमान की रक्षा के लिये जिन देश भक्तों

ने अपना जीवन–पुष्प चढ़ाया है उन्हें समस्त देशवासी कभी नहीं भूल सकते। इनमें सर्वश्री मंजीत सिंह, रमेश कुमार, कुलदीप डोगरा, संजीव सिंह, सन्नी पाधा, नरेन्द्र शर्मा, बलवंत खजूरिया, बोध राज, दीपक शर्मा एवं जसवंत सिंह शामिल हैं। जब–जब भी एक सफल जनांदोलन की चर्चा होगी, इन शहीदों को लोग याद करेंगे। इनके अतुलनीय बलिदान से आने वाली पीढ़ियाँ सदैव प्रेरणा लेती रहेंगी।
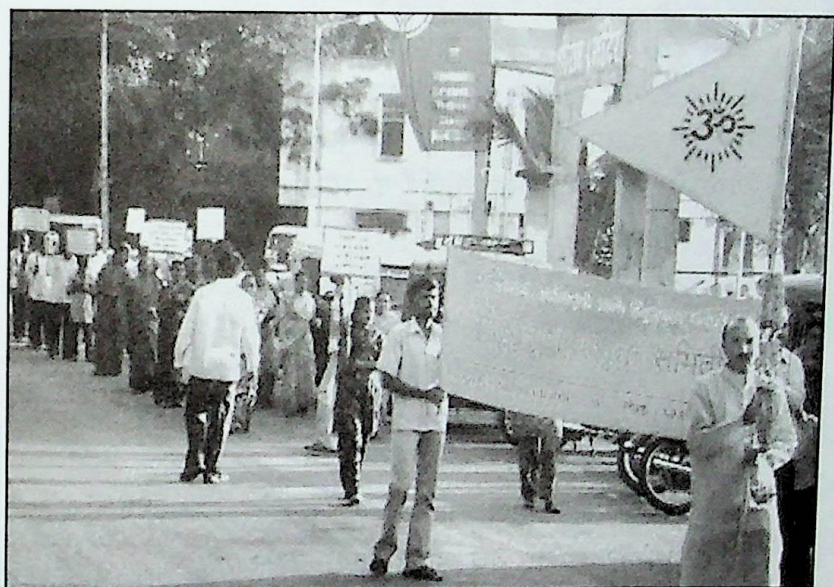
(श्री अमरनाथ भूमि आंदोलन – 2008)

वतन पे जो फ़िदा होगा

हिमालय की बुलन्दी से, सुनो आवाज़ है आयी
कहो माँओं से दें बेटे, कहो बहनों से दें भाई

वतन पे जो फ़िदा होगा, अमर वो नौजवाँ होगा
रहेगी जब तलक दुनिया, यह अफ़साना बयाँ होगा
वतन पे जो फ़िदा होगा, अमर वो नौजवाँ होगा

हिमालय कह रहा है इस वतन के नौजवानों से
खड़ा हूँ संतरी बनके मैं सरहद पे ज़मानों से
भला इस वक़्त देखूँ कौन मेरा पासबाँ होगा
वतन पे जो फ़िदा होगा, अमर वो नौजवाँ होगा

चमन वालों की ग़ैरत को है सैय्यादों ने ललकारा
उठो हर फूल से कह दो कि बन जाये वो अंगारा
नहीं तो दोस्तो रुसवा, हमारा गुलसिताँ होगा
वतन पे जो फ़िदा होगा, अमर वो नौजवाँ होगा

हमारे एक पड़ोसी ने, हमारे घर को लूटा है
भरम इक दोस्त की बस दोस्ती का ऐसे टूटा है
कि अब हर दोस्त पे दुनिया को दुश्मन का गुमाँ होगा
वतन पे जो फ़िदा होगा, अमर वो नौजवाँ होगा।

सिपाही देते हैं आवाज़, माताओं को, बहनों को
हमें हथियार ले दो, बेच डालो अपने गहनों को
कि इस कुर्बानी पे कुर्बां वतन का हर जवाँ होगा
वतन पे जो फ़िदा होगा, अमर वो नौजवाँ होगा।

गीतकार : आनंद बक्षी

लेखक की रचनाएँ

(2010)

आनन्द
की
राह
पर

A Blissful Journey

(Seven days with a Yogi to know thyself)